श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

ोग

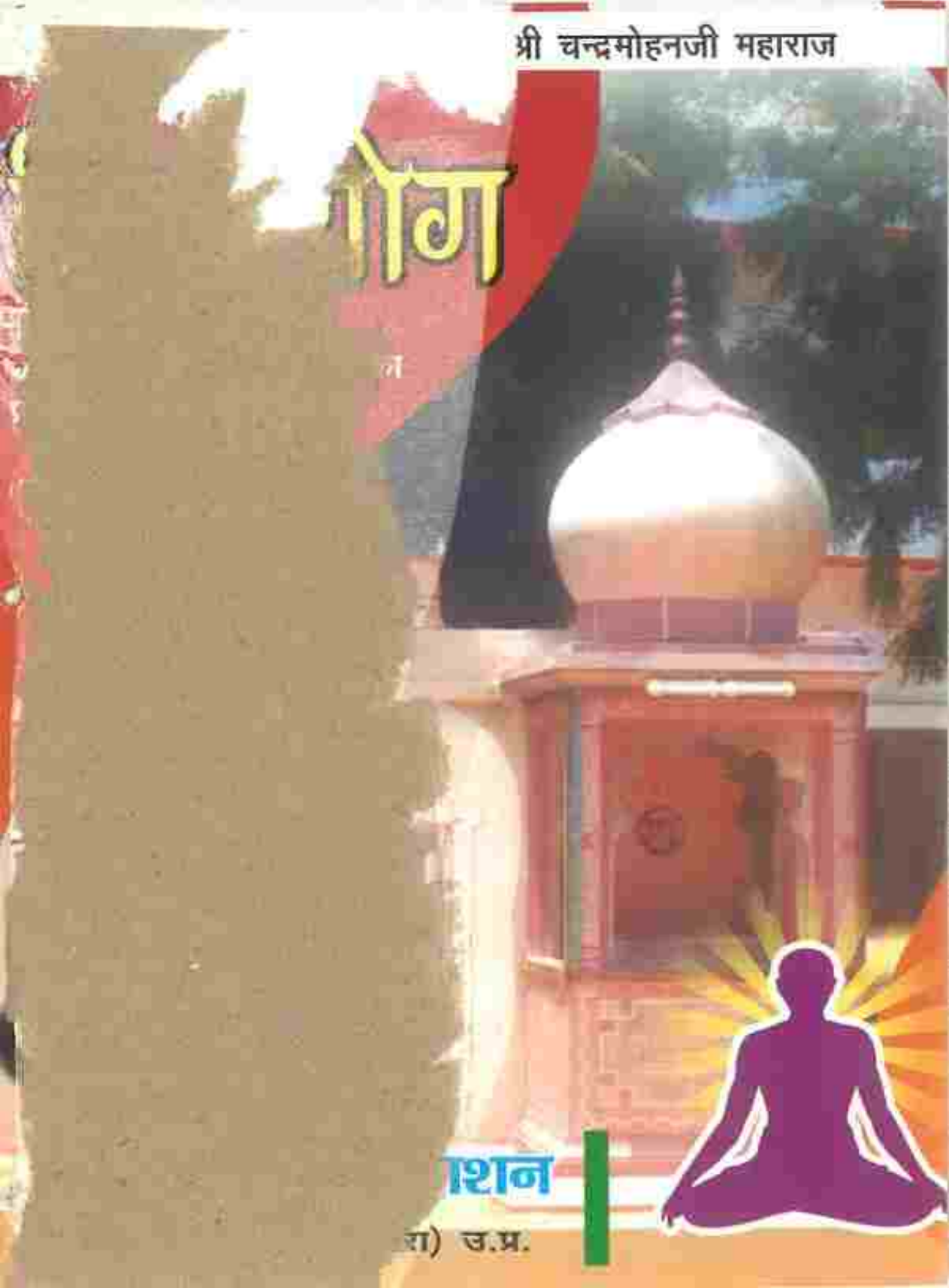

ाशन

रा) उ.प्र.

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष: 41 अंक : 1

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च।।
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्टे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने।।
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे।।

देवाधिदेव, पुराण पुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठि ब्रह्म को नमस्कार है। सृष्टि करने वाले तथा सभी अर्थों के ज्ञाता स्वयंभू ! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा, परमात्मा को नमस्कार है। विश्व के उत्पत्ति स्थान, देवों के हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णु को नमस्कार है।

अप्रैल 2008

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय – पावन प्राकट्य दिवस – डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी	10
3.	अष्टांग योग (3) – डॉ. कपिराम शर्मा	13
4.	तेरी लीला अपरम्पार – श्री मोहन स्वरूप योगी	16
5.	नववर्ष 2008 पर शुभकामनायें – श्री बी.पी. शर्मा	17
6.	यौगिक प्रश्नोत्तरी – आचार्य पूर्णचन्द्र पंत	18
7.	उपनिषदों में परमसत्य के उद्गार – डॉ. विजय सिंह	22
8.	सुख व शान्ति – श्री अरुणाल देव मालवीय	25
9.	कैसे उद्धार कर पाओगे? (कविता) – श्री कुन्दन लाल अग्रवाल	26
10.	रामचरित मानस और गुरुभक्ति – श्री वेदव्रत द्विवेदी	27
11.	प्रभु पार उतार मुझे – श्री आर.जी. श्रीवास्तव	29
12.	योग में मन की प्रबलता – डॉ. जे.पी. शर्मा	30
13.	अवतार दिवस पर विशेष (कविता) – श्री वेदव्रत द्विवेदी	32
14.	समस्ती ही क्यों? – श्री केशवदेव उपाध्याय	33
15.	रूपं–रूपं प्रतिरूपो बभूव – श्री सिद्धेश्वर प्रसाद	39
16.	विषाद योग – पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय	43
17.	श्री रामलाल प्रभवे नमः (कविता) – श्री जगदीशराय बंसल	46
18.	दतिया योग शिविर – श्री अनिल दुबे	48
19.	श्रीमद्भागवत महात्म – श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव	49
20.	भगवत्तत्व एक विश्लेषण – श्री रवीन्द्र नाथ	52
21.	भगवान और भक्त का सम्बन्ध – श्री कृष्णराम दुबे	55
22.	कर्मज्ञान – सुश्री निर्मला चन्देल	59
23.	वेद में गायत्री तत्व – डॉ. श्रीनिवास शर्मा	60

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 120.00
त्रिवार्षिक	: रु. 310.00
आजीवन (10 वर्षीय किस्त)	: रु. 850.00

योगासन एवम् ऊर्ध्वरेतसता

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों की मतियाँ भिन्न–भिन्न होती हैं और अपनी मति के अनुसार ही हर व्यक्ति उपासना के मार्ग में निकलता है। किन्तु फिर भी एक प्रश्न उपासक के सामने बना रहा करता है कि गुरूदेव क्या है और कितने शक्तिशाली हैं? साधारण रूप से इसका उपसंहार तो इसी के अन्दर हो जाता है।

मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो मद्गुरूस्त्रिजगद्गुरूः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थात्– साधक को चाहिये कि वह अपने इष्टदेव को सकल अंड–ब्रह्माण्डों का नायक समझे और अपने गुरूदेव को तीनों लोकों का गुरू समझे, प्राणी मात्र के अन्दर ओत–प्रोत रहने वाले दिव्य चेतना को अपना ही आत्मा माने। यह साधक की अपनी धारणा है।

श्रद्धामयोऽयं पुरूषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

अर्थात्–परमात्मा का स्वरूप श्रद्धामय है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बन जाता है। भारतवर्ष का श्रद्धामय–इतिहास यह प्रमाणित करता है कि श्रद्धावान पुरूषों ने अपनी श्रद्धा के बल से पत्थरों से ईश्वर को प्रकट कर लिया, धन्ना जाट आदि की कथायें भक्त चरित्रों के अन्दर बड़े उत्साह के साथ गाई जाती हैं। धन्ना जाट काश्त करने वाला साधारण व्यक्ति था, उसको केवल मात्र बहलावे के लिये किसी पंडित ने कह दिया कि तुम्हारे हाथ में जो टुकड़ा है इसके अन्दर श्री श्यामसुन्दर छिपे हुए हैं। उसके मन में पूर्ण परिपक्व निष्ठा बनी और उस पत्थर के टुकड़े में से जगदात्मा अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण को ढूँढ निकाला। यह श्रद्धा का ही उत्तमोत्तम परिणाम है। धन्ना के अतिरिक्त और भी अनन्त कथायें हैं। जिन्होंने श्रद्धा के आधार पर सब कुछ पा लिया है। इसलिये "**मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो**" की धारणा करके साधक अपने इष्टदेव को सर्वथा पूज्य मान ही सकता है।

तात्विक बात

किन्तु तात्विक बात क्या है? इसके विषय में कुछ विचार कर लेना परम आवश्यक है। जिस समय हम रामायण को उठाकर अध्ययन करते हैं तो उस समय देखते हैं कि भगवान शिव के आराध्यदेव श्री रामचन्द्र जी हैं। इसके लिये सबल प्रमाण है–सती का वह उपाख्यान जिसके कारण भगवान सदाशिव ने उनका परित्याग कर दिया था। उनका अपराध इतना ही था कि

उन्होंने भगवान शिव की अर्धांगिनी होते हुए श्री रामचन्द्र जी के ईशत्व की परीक्षा के लिए कृत्रिम सीता का रूप बना लिया। भगवान शिव को यह स्वीकार न हुआ और उन्होंने सती का परित्याग इसलिये कर दिया क्योंकि उन्होंने उनके आराध्यदेव श्री रामकी पत्नी सीता का रूप धारण किया था, जिसको वे मातृ भावना से देखते थे।

इस छोटी सी भूल का इतना बड़ा परिणाम भगवती सती को भोगना पड़ा कि जब तक उन्हें पार्वती रूप से भगवान शिव ने अंगीकार नहीं किया तब तक उन्हें घोर तप करना पड़ा और जब तक सती का शरीर रहा तब तक वे परित्यक्ता ही रहीं। अर्धांगिनी रूप से उनका मिलन फिर सती स्वरूप में न होकर दूसरा जन्म धारण करने पर पार्वती रूप से हुआ। पुराणों की इस कथा से यह आभासित होता है कि श्रीराम, भगवान शिव के आराध्यदेव हैं। उधर पद्मपुराणान्तर्गत दूसरा प्रकरण मिलता है। भगवान श्री राम को, जबकि सीता हरण हो गया, घोर दुःख हुआ व उन्होंने दण्डकारण्य में रहकर भगवान सदाशिव का सहस्त्र नाम जपते हुए व पर्णाहार करते हुए या केवल जल का ही आधार लेकर वर्षों तक घोर तप किया। परिणाम स्वरूप भगवान सदाशिव प्रगट हुए। भगवान शिव के प्रगट होने का विषद वर्णन शिव गीता में मिलता है। पहले एक बड़ा भारी महान शब्द सुनाई दिया। धीरे-धीरे प्रकाश हुआ और उस महान प्रकाश के अन्दर जगदम्बा पार्वती सहित भगवान सदाशिव विराजमान थे। भगवान सदाशिव ने प्रगट होकर श्रीराम को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया और उनको आश्वासन देते हुए कहा-

इदं पाशुपतं दिव्यं प्रगृहाण रघूद्भव।
एतदासाद्य पौलस्त्यं जहि मा शोकमर्हसि।।

हे राम! तुम यह पाशुपत अस्त्र ग्रहण करो इसको लेकर तुम रावण को मारो तुम चिन्ता के लायक नहीं हो। परिणामस्वरूप भगवान शिव से वरदान प्राप्त कर श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और घोर युद्ध के साथ रावण को पराजित करके व उसके मृत हो जाने के बाद उसके भाई विभीषण को राज्य सौंपकर सीता को वापस ले आये। जिस समय श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और सेतुबन्ध बनाना आरम्भ किया उससे पहले उन्होंने अपने आराध्यदेव भगवान सदाशिव की प्रतिष्ठा समुद्र किनारे की एवं भगवान शिव की आराधना करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर लंका पर चढ़ाई की और संग्राम में विजय प्राप्त की। लंका के संग्राम के बाद जिस समय श्रीराम पुष्पक विमान से लौट रहे थे उस समय अपनी सहधर्मिणी सीता को अपने वनवास में रहने के स्थानों को दिखलाया। उसमें विशेष रूप से भगवान शिव की जहाँ आराधना की गयी थी उस स्थान को दिखलाते हुए श्रीराम ने कहा-

"अत्र पूर्व महादेवः प्रसाद मकरोद्विभुः।"

अर्थात् हे सीता यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी। इस प्रकरण के पढ़ने से यह पूरी तरह आभासित होता है कि भगवान सदाशिव श्रीराम के आराध्य देव हैं। इसी प्रकार जब हम श्रीकृष्ण चरित्र का अध्ययन करते हैं तो उनके गोकुल में बाललीला के

समय में भगवान शिव दर्शनार्थ आते हैं और उन्हें अपना इष्टदेव बतला करके यशोदा जी से प्रार्थना करके दर्शन करते हैं। द्वारिका वास के समय में रुक्मिणी से पुत्रोत्पत्ति के निमित्त उपमन्यु ऋषि से दीक्षा ग्रहण करके भगवान श्रीकृष्ण ने बारह साल तक घोर तप किया। परिणामस्वरूप उनके घर में रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। इसके साथ-साथ भगवान श्रीकृष्ण द्वारा नित्य नियम से भगवान शिव का पार्थिव पूजन का वर्णन पुराणों में मिलता है। एक बार माध्यान्हिक नित्यकर्म में भगवान श्रीकृष्ण लगे हुए थे। उसी समय मार्कण्डेय आदि मुनि भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आये। उस समय भगवान श्रीकृष्ण शिव का पूजन कर रहे थे। मार्कण्डेय आदि मुनियों ने श्रीकृष्ण की शिव उपासना को देखकर बड़े आश्चर्य के साथ श्रीकृष्ण से ही यह प्रश्न किया-

त्वं विष्णुः कमलाकान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।
तव पूज्यः कथं शम्भूरेतत् सर्वं वदास्मान्।।

अर्थात्-हे श्रीकृष्ण ! तुम स्वयं परमात्मा जगद्गुरु विष्णु हो तुम्हारे पूज्य भगवान शिव किस प्रकार हैं यह बात हमारी समझ में नहीं आयी। इसलिये हमें स्पष्ट खोलकर समझाओ कि भगवान सदाशिव तुम्हारे आराध्यदेव किस प्रकार हैं? भगवान श्रीकृष्ण ने इसका उत्तर दिया हे मुनि मार्कण्डेय! यद्यपि तुम तात्विक बात को जानते हो फिर भी तुमने लोकहित के विचार से जो प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हें समझाकर बतलाता हूँ। जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ उसका वर्णन सावधान होकर सुनो।

ज्योतिर्यत् परमानन्दं सावधानमतिः शृणु।
वामांगादभवतस्य सोहंविष्णुरिति स्मृतः।।
जनयामास धातारम दक्षिणांगात्सदाशिवः।
मध्यतो रुद्रमीशानं कालात्मा परमेश्वरः।।
तपस्तपन्तु भोवत्सा इति तानब्रवीच्छिवः।

अर्थात्-जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ वह भगवान महादेव जी हैं। मैं उनके वाम भाग से पैदा हुआ इसलिये विष्णु नाम से विख्यात हूँ। उन्होंने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्मा जी को पैदा किया और मध्य से रुद्र जी को पैदा किया और हम सब की उत्पत्ति हो जाने के बाद भगवान जी ने आज्ञा दी कि हे पुत्रो तुम तप करो। इस से यह मालूम पड़ता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों के मूल कारण कोई और ही है और वह सत्ता उनसे आगे की है।

श्री देवी भागवत आदि पुराणों के अन्दर कुछ और ही प्रकार की कथायें मिलती हैं।

एक बार ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों देव घूमते हुए किसी दिव्य लोक में जा निकले, वह लोक बड़ा दिव्य था, जिसको ये लोग पहले जानते ही नहीं थे। जब उस लोक में ये आगे बढ़ते ही चले गये तो एक दिव्य मन्दिर के अन्दर दिव्य सिंहासन पर विराजमान अष्टभुजी महामाया भगवती

दुर्गा को देखा। ज्यों ही इन सबने भगवती का दर्शन प्राप्त किया तो ये सब युवक स्त्रियाँ बन गये। जब अपने आप की यह स्थिति देखी तो स्वयं विष्णुभगवान ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक देवी की स्तुति की। इन सबने हाथ जोड़कर कहा:–

हे माता! हमने यहां आकर के यह जान लिया कि सृष्टि की उत्पति और प्रलय तुम से ही होती है। हमने इस लोक में आ करके हरि और ही देखे। इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा और ही थे। इससे यह ज्ञात होता है कि और भुवनों में भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ही होंगे। हे माता! हम तेरे महान प्रभावों को नहीं जान सके। इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव से भी परे और तत्व है, जिस तत्व की ये स्वयं आराधना करते हैं। श्री महाभारत में युद्ध के उपरान्त गीता के प्रकरण में अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना की कि हे प्रभो! आपने युद्ध के समय जो गीता सुनाई थी वह अब मुझे पूरी–पूरी तरह याद नहीं है इसलिये कृपा करके मुझे गीता का उपदेश दुबारा कर दीजिये। अर्जुन की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण ने उत्तर दिया कि अर्जुन! तुमने यह बड़ी भारी भूल की कि उस परमोदेश को भुला दिया –

न शक्यस्तन्मया भूयः तथा वक्तुंह्यशेषतः।
परंहि ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया।।

अर्जुन तुमने उस उपदेश को भुला दिया यह बहुत भारी गलती की। वह उपदेश मैंने योग युक्त होकर दिया था। इसलिये वह स्वयं परब्रह्म का ही उपदेश था। अतः वह पवित्र ज्ञान जैसा का तैसा अब मुझसे भी नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकरण को पढ़ करके भी कृष्ण का योग युक्त होकर उपदेश देना स्थिति का तारतम्य बतलाता है। इन सभी प्रकरणों से यह प्रगट होता है कि श्रीराम के रूप में श्रीशिव ने व कभी शिव के रूप में श्रीराम ने किसी और ही तत्व की उपासना की थी जो परात्पर है और सर्वतोबन्ध है, सभी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता उसी परब्रह्म के प्रतीक मात्र हैं और वह सत्ता उनसे भी परे है। हमारे शास्त्रों में व पुराने इतिहास में श्रीगुरूदेव की बहुत बड़ी महिमा लिखी है और उसका अन्तिम निष्कर्ष यह दिखलाया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी देव उस तत्व की आराधना से ही ब्रह्मा–विष्णु–शिव हैं। अन्यथा सर्वसाधारण मनुष्यों जैसे मनुष्य ही हैं।

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मा–विष्णु–महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरूसेवया।।

ये सभी प्रकरण यह प्रगट करते हैं कि यह कोई अव्यक्त सत्ता है। जो सभी देवों को प्रकाश देने वाली है और इसकी आराधना से ही मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त हो सकता है। उपनिषदों में विशेषतः ब्रह्म विद्योपनिषद में सीधे शब्दों में स्पष्ट कहा गया है–

वेदशास्त्राणि चान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत्।।
गुरूभक्तिः सदा कुर्याछ्रेयसे भूयसे नरः।।
गुरूदेव हरिः साक्षान्नान्यां इत्यब्रवीच्छ्रुतिः।।

अर्थात्–वेदशास्त्र पुराणादि से विहित कर्म, जो कर्म उपासना आदि का विषय है उस सबको छोड़कर परम श्रेय लाभ करने के लिये मनुष्य को गुरुभक्ति करनी चाहिये। गुरूदेव का स्वरूप क्या है और उनकी शक्ति क्या है? यह आगे की पंक्तियों में हम वर्णन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अधिकांश लोगों में इस बात का प्रचार है कि जहाँ पर गुरू भक्ति की चर्चायें चला करती है वहाँ से मनुष्य अपना नाक मुँह सिकोड़ कर पीछे हट जाया करते हैं और कहा करते हैं कि यह गुरूडम है, ढकोसला है, एक आदमी का प्रपंच है जो कुछ भोले–भोले व्यक्तियों को बहका करके अपने पीछे लगा लेता है और अपनी पूजा ईश्वर की तरह कराया करता है। ऐसा नहीं होना चाहिए, किन्तु यह बात यथार्थ नहीं है। यह उन लोगों की भावना है जो सदगुरू तत्व को बिलकुल नहीं जानते और उससे बिल्कुल परे हैं। श्वेताश्वर उपनिषद का लेख है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

अर्थात्–मनुष्य की जैसी अपने इष्टदेव में श्रद्धा हो वैसी ही गुरूदेव में भी होनी चाहिए तभी उसको गुप्त रहस्यों का बोध हुआ करता है। वैसे श्रद्धा के मार्ग में साधारण तो नियम यही है कि उपदेष्टा गुरू के प्रति मनुष्य को ईश्वरीय बुद्धि रखनी ही चाहिये और उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार गुरूदेव का क्या स्वरूप है? उसको कुछ प्रमाण सहित हम समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। योग–दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने गुरू का व्याख्यान करते हुए सूत्र की रचना की –

पूर्वेषामपि गुरूः कालेनानवच्छेदात्।

इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भगवान व्यासदेव जी ने ये पंक्तियों लिखी है:–

पूर्वे हि गुरवः कालेनावच्छिद्यन्ते,
यत्रावच्छेदनार्थेन कालो नोपावर्त्तते,
स एष पूर्वेषामपि गुरूः। यथादस्य,
सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्या सिद्धस्तथाऽति,
क्रान्ति सर्गादिष्वपिप्रत्येतव्यः।

इसका अर्थ यह है–कि वह नित्य शुद्धचित्त परमात्मा सृष्टि के शुरूआत से अब तक होने वाले गुरूओं का भी गुरू है वह अनादि सिद्ध है उसकी ही एक सत्ता इस प्रकार की है जो काल की सीमा से आगे है, इसी सूत्र के भाष्य में–

भास्वती टीका में:–

पूर्वे गुरवो हिरण्यगर्भादयः कालेनाच्छिद्यन्ते।

अर्थात्–जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है वह अधिकृत सीमा है। सदगुरू तत्व उससे भी आगे की वस्तु है। जिसकी कोई अवधि नहीं है, जिसका कोई अन्त नहीं है। वह है

अनादि और अनन्त। शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना प्रकाश रखती है। परमात्मा की सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं और उन अनेक ब्रह्माण्डों के अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिव है।

तत्र–तत्र चतुर्वक्त्रा ब्राह्मणो हरयो भवाः
असंख्याताश्च रूद्राद्या, असंख्याता पितामहाः।
हरयश्चाप्य संख्याता, एक एव महेश्वरः।।

अर्थात्–अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर असंख्य ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव है और वह सद्गुरु तत्व नित्य मुक्त परात्पर निर्गुण ब्रह्म ही है, उसमें से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव का प्राकट्य है। एक महेश्वर के अन्दर ही ईश आदि सब देवता दिखलाई देते हैं।

ईशाद्या सकला देवाः दृश्यन्ते परमात्मनि।

अर्थात्–ईश आदि सभी देवता उस परमात्मा में इस प्रकार प्रकट होते है जिस प्रकार जल के अन्दर जल की लहरें पैदा होती हैं या सोने से सोने के जेवरात पैदा हो जाते हैं, अतः निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है:–

यत्रावच्छेदनार्थे कालो नोपावर्तते स गुरूः।

अर्थात्–जिसका अन्त करने के लिये काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है, वही सत्ता सद्गुरू तत्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं:–

भयादस्य अग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्युः धावति पंचमः।
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारको नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।।

अर्थात्–वही एक सत्ता इस प्रकार की है जिसके भय से अग्नि तपती है, सूर्य तपता है, वायु और इन्द्र दौड़े–दौड़े फिरते हैं और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाशशील है वहाँ न सूर्य चमकता है न चन्द्रमा चमकता है न बिजली का प्रकाश है अग्नि का तो कहना ही क्या?

उसी के कारण यह सब विश्व प्रकाशित हो रहा है, वही सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है, वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूप से वन्दना उस शरीर की की जाती है जिसके अन्दर यह तत्व प्रकाशित होता है। कठोपनिषद का वचन है –

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमैवेष वृणुते तेन लभ्यस्त–स्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्।।

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

योगेश्वर प्रभुश्री रामलालजी महाराज

अर्थात् यह आत्मा बहुत प्रवचन–बाजी से बुद्धिमानी से और केवल शास्त्र श्रवण से ही प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत जिसका वह स्वयं वरण करता है उसको मिलता है। और जिसे यह मिल जाता है उसके शरीर को यह अपना बना लेता है। इस मंत्र का सीधा सा अर्थ यही हुआ है –

जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।

अर्थात्–उस परमात्मा को पाकर उसमें विलीन होकर मनुष्य उसका ही रूप बन जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ही नित्य चेतन–घन सच्चिदानन्द प्रभु जिसके शरीर को अपना अधिष्ठान बनाते है उसमें वे स्वयं ही होते हैं। अतः तात्विकी बात तो यही है कि जिसके शरीर में आदि अन्त रहित उस निर्गुण सत्ता का प्रकाश हो जाता है वही गुरू पद वाच्य है। वैसे योग सिद्धान्त के अनुसार जो योगी कृतकृत्य हो चुका है जिसकी परम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली निर्वाण की वृत्ति ही शेष है, और वह भी वृत्ति हर समय अस्मि, अस्मि, अस्मि का ही जाप किया करती है। इसको निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। जो योगी ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो करके कूट स्थिति में पहुँच गया है और जिसकी केवल यह निर्वाणोन्मुखी वृत्ति शेष है जो अपने आपको सर्व भूतस्थ देखता है और सर्व भूतों को अपने अन्दर देखता है, उसकी दृष्टि में द्वैत खत्म हो गया है। भेदभाव की श्रृंखला टूट चुकी है।

जगदात्मा श्रीकृष्ण के कथानुसार:–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

इस प्रकार का व्यक्ति भी योग युक्त होने से गुरू पद वाच्य है। जिसके हृदय को अपना बना करके यह सत्ता प्रकाशित हो उठती है वही गुरू है। वही शक्तिपात कर सकता है और सिद्धियों का दाता है। इसलिये हमारे मन के अन्दर जो गुरू शब्द की अवहेलना रही है उसका कारण केवल एक ही होता है कि हम गुरू की सही परिभाषा नहीं जानते। पुराणों में गुरू की परिभाषा निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित है:–

गु शब्द स्त्वन्धकारोऽस्ति, रू शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद, गुरूरित्यभिधीयते।।

अर्थात्–'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रू' शब्द का अर्थ है अन्धकार को नष्ट करने वाला। अन्धकार के वेग को रोक करके प्रकाश देने वाली शक्ति का नाम गुरू है। और यह स्वयं प्रणव स्वरूप है। इसलिये साधक के लिये पुराणों में हमारे पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया:–

यावत्कल्पांतको देह–स्तावद्देवि गुरं स्मरेत्।
गुरूलोपो न कर्तव्यः स्वछन्दो यदि भावयेत्।।

अर्थात्–कल्पभर रहने वाला शरीर भी प्राप्त हो जाये और कितनी ही ऊँची सामर्थ्य वाला हो जाय तो भी गुरूदेव का स्मरण करते रहना चाहिये। आजादी चाहने वाले व्यक्तियों को गुरू की उपेक्षा कभी न करनी चाहिये। तभी मनुष्य परम श्रेय का भागी हो सकता है।

परम गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलालजी महाराज का प्रावन प्राकट्य दिवस

योगाचार्य डा. दासलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर की भांति महायोगेश्वरों का भी जन्म व कर्म दिव्य होता है। इस दिव्यता को जो जानता व समझता है वह भी दिव्य हो जाता है तथा मुक्त हो जाता है। किंतु जन्म कर्म के इन रहस्यों को हर व्यक्ति जान नहीं सकता। दिव्य दृष्टि संम्पन्न योगीजन ही इन रहस्यों को जानते हैं। योग अमर व अमृत विद्या है, इसी विद्या से मनुष्य बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस विद्या का समय-समय पर भगवान स्वयं प्रसार करते है या इनके ही रूप में योगेश्वर सिद्धयोगी भारत भूमि में विद्यमान रहकर प्रचार-प्रसार करते हैं। मध्य काल के भगवान मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि महासिद्धों ने योग विद्या को प्रचारित कर मानव को परम कल्याण की ओर लगाया है। ऐसे अनादि सिद्ध, कल्पनाजीवी, योगदेह से नित्य हिमालय में वास करने वाले परम कारूणिक सिद्ध महापुरुष श्री रामलाल जी महाराज का नाम विख्यात है। आप अपने भक्तों में साक्षात् महेश्वर के रूप में पूजित हैं। आप योगियों के भी योगी सदगुरु हैं तथा भक्तों की हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष हैं।

आपके विषय में बहुत समय पूर्व ही 'काकनाड़ी संहिता' में आपके योगावतार की भविष्यवाणी की गयी है। आपका परमपावन प्राकट्य गुरुओं की पावन नगरी अमृतसर में विक्रमी संवत् 1845 को चैत्र शुक्ला नवमी बृहस्पतिवार को वृष लग्न में स्वनामधन्य प्रसिद्ध ज्योतिर्विद पंडित गंडाराम जी महाराज के यहाँ हुआ। आपकी माता का पवित्र नाम भागवन्ती देवी था। ब्राह्मणों में सारस्वत वंश प्रसिद्ध वंश है। इसी में जोशी वंश में पण्डित साँईदत्त जी हुए। आप बाल्यकाल से ही भगवत्प्रेमी, परम सदाचारी, आस्तिक व आध्यात्मिक विचारों के थे। बचपन में कई बार कई-कई महिनों तक एकान्तवास व अनुष्ठानों में लगे रहते थे। कठोर तप व स्वाध्याय के फलस्वरूप आप में अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हो गया। अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्ज्वलित कर देना, वर्षा कर देना आदि आदि विभूतियाँ आप में सहज रूप में प्रगट रहने लगी।

आगे आपके दो पुत्र पण्डित कन्हैयालाल व पण्डित सुखदयाल जी हुए। पण्डित सुखदयाल जी बहुत ही दयालु व विद्वान पुरुष थे। इन्हीं परम भागवत पुण्यशील भक्त के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया, जिनका पावन नाम 'गण्डाराम' रखा गया। आप पंजाब प्रान्त के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के रूप में विख्यात हुए। आप बड़े तेजस्वी महापुरुष थे, जिनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। आपकी तपस्या व साधना का परम सुफल यह रहा कि आपके यहाँ भगवान ने महाप्रभु के रूप में प्रकट होकर वंश को प्रकाशित किया और मानवमात्र का उद्धार किया। सदैव मुक्त, नित्यसिद्ध होते हुए भी वे अपने संस्कारी बच्चों के दु:खद्वन्द्व व ताप को देखकर दयार्द्र होकर नाना शरीर अपनी इच्छा से धारण करते रहते हैं। पिताश्री ने

आपका पावन नाम 'रामलाल' रखा। चार अक्षरवाला यह नाम धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष को प्रदान करने वाला है। नित्य कूटस्थ, आत्मस्वरूप में स्थित रहने वाले महायोगी दया से अभिभूत होकर योगी सद्गुरु के रूप में प्रकट होकर दुःख निवृत्ति के एकान्तिक उपाय योग का ज्ञान देते हैं। आपकी शैशवकालीन लीलायें भी परम अलौकिक रहीं। आपके अद्भुत सामर्थ्य को देखकर एक अवतारी के रूप में आपकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। पाँच वर्ष की आयु में पिताश्री ने पाठशाला में प्रवेश दिलाया। जिनके श्वासों में चारों वेद का ज्ञान समाया हुआ हो उसे अध्यापक भला क्या पढ़ायेगा? अध्यापक भी आपकी अलौकिक प्रतिभा से आश्चर्य चकित थे। संस्कृत अध्ययन के बहाने से आप चौदह वर्ष की अल्पायु में गृह त्याग कर निकल पड़े। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे, वहाँ विद्याध्ययन करने लगे।

एक दिन एक छात्र ने एक चमत्कार देखा। एक भयंकर सर्प अपना फन फैलाये आपके ऊपर छाया किये हुए है। उस छात्र ने भय और आश्चर्य से युक्त होकर इसकी जानकारी अपने साथियों को दी। सभी इस अद्भुत घटना को देखने के लिए एकत्रित हो गये। उन लोगों के वहाँ पहुँचने तक वह सर्प अदृश्य हो चुका था। श्री प्रभुजी निश्चिन्त होकर विश्राम कर रहे थे। इस घटना की चर्चा सर्वत्र फैल गयी। कुछ दिन वहाँ रहने के पश्चात् श्री प्रभुजी हरिद्वार चले गये। कनखल में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् वे काशी चले गये। उन दिनों काशी के समाज में तन्त्र के बल पर अनाचार होता था। 'भैरवी चक्र' जैसे तान्त्रिक प्रयोगों से स्त्री–पुरुष को स्तम्भित कर दिया जाता था। प्रभु जी ने ऐसे अनाचार एवं तन्त्र प्रयोगों को अपने योग बल से समाप्त कर दिया और इस प्रकार की कुप्रथा सदा के लिये मिटा दी गयी। आप पर भी कई तान्त्रिक प्रयोग हुए किंतु सब निष्फल रहे। तीर्थयात्रा करते–करते आप श्रीवृन्दावनधाम आये। वहाँ समस्त बृज क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण करते हुए दाऊजी होते हुए प्रभुजी आगरा जिले में बरहन पहुँच गये। बरहन में आपके दिव्य रूप एवं योग विभूतियों से प्रभावित होकर कई लोग उनके अनन्य भक्त बन गये। आपके पास आने से ही दुःखी जनों की आधिव्याधि मिट जाती। जिसके लिए जैसा कहते वैसा ही हो जाता था। वहाँ से वे सपाँई गाँव आये। गाँव में डा. प्यारेलाल आदि बहुत से आपके भक्त बन गये।

अब श्री प्रभुजी के पास लोगों की भीड़भाड़ रहने लगी। वे गाँव के बाहर निवास करते थे। ग्रामवासियों ने इनके लिए एक गुफा का निर्माण कर दिया, जहाँ वे निर्विघ्नतया समाधि में बैठ सकें। यहाँ श्री प्रभुजी दो–ढाई वर्ष तक रहे। अब इनकी इच्छा नेपाल हिमालय जाने की हुई। इनके भावों को समझते हुए भक्तों ने प्रार्थना की– 'प्रभो! आप हिमालय जाने का विचार त्याग दें। हम आपके बिना अनाथ हो जायेंगे।' श्री प्रभुजी ने कहा– 'हिमालय तो हम जायेंगे ही।' एक दिन प्रातःकाल की बेला में चार बजे गुफा से सूक्ष्म रूप से अणिमा सिद्धि के द्वारा बाहर निकल कर आकाश मार्ग से जाने लगे। गुफा का दरवाजा बाहर से बन्द था और वहाँ भक्तजन बैठे हुए थे। आकाश मार्ग से जाते हुए उन्हें ग्राम के एक किसान ने देख लिया। श्री प्रभुजी ने उसे अभयमुद्रा में आशीर्वाद देते हुए कहा– 'हम गुफा वाले बाबा हैं। नेपाल हिमालय को जा रहे हैं।' किसान ने गुफा पर आकर सभी को इसकी जानकारी दी।

सत्यता जानकर सभी अत्यन्त दुःखी हो गये। श्री प्रभुजी की आकाशवाणी हुई– 'चिन्ता मत करो, दस–बारह वर्ष बाद फिर आयेंगे।' आप हिमालय में अपने गुरुदेव सदाशिव के पास कई वर्ष रहे। उन्हें उनकी आज्ञा हुई– 'पृथ्वी मण्डल पर जाओ, हमारे बहुत से संस्कारी तुम्हारे द्वारा योगमार्ग में आकर ब्रह्मभाव को पाकर मेरी चिति शक्ति में समा जायेंगे।'

अपने गुरुदेव सदाशिव की आज्ञा मानकर श्री प्रभुजी अवनि मण्डल पर आ गये। अमर विद्या योग के प्रचार–प्रसार के लिए आपने कई आश्रमों की स्थापना की। सन् 1921–22 में ऋषिकेश में योग साधन आश्रम की स्थापना की। आपने बीमार व्यक्तियों के लिए अपने मन से कुछ क्रियायें उद्घाटित की जो 'जीवन तत्व साधन' के नाम से भारत में प्रचारित हुई। आपने लाहौर में अमृतसर में तथा अन्य कई स्थानों पर आश्रम स्थापित किये। अधिकारी योग जिज्ञासुओं को शक्तिपात की क्रिया से कुण्डलिनी जागरण तथा अन्य रहस्यमय क्रियायें आपके संकल्प मात्र से होने लगी। यही परम्परा 'सिद्धयोग' की परम्परा कहलाती है। इस परम्परा में सिद्धयोगी गुरु की इच्छा से साधक के अन्दर विभिन्न अद्भुत क्रियायें स्वतः ही होने लगती है।

आपके मुख्य शिष्यों में योगीराज मुल्खराज जी महाराज, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज, सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं योगी नृसिंहमूर्ति जी थे। प्रधान शिष्याओं में महात्मा ऋषिदेवी जी तथा माता द्रोपदी देवी प्रमुख हुई। ये सभी महान शक्तिसम्पन्न सिद्धयोगी हुए। इनमें सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने आध्यात्म योग का बहुत प्रचार किया। लाखों साधक ध्यान योग की दीक्षा पाकर योग ध्यान में आरूढ़ होकर योग के परम लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। श्री प्रभुजी की परम्परा के शिष्य–प्रशिष्य देश विदेश में योग का खूब प्रचार कर रहे हैं। आपने योग जगत को बहुत कुछ दिया, योग समाज आप जैसे महायोगी के दिव्य जीवन पर गर्व अनुभव करता है। आपने अपने योग साधकों को योग का वास्तविक स्वरूप समझाया है तथा निरंतर ध्यान योग के अभ्यास करते रहने की आज्ञा व प्रेरणा दी है। परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज सद्गुरु के रूप में सदा प्रकट रहकर शिष्यों के हृदयस्थ अज्ञान ग्रन्थि का भेदन करते हैं। गुरुगीता का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है–

सच्चिदानंद रूपाय व्यापिने परमात्मने।
नमः श्रीगुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थि भेदिने।।

अर्थात् श्री गुरुनाथ को प्रणाम करते हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। सर्व व्यापक हैं, परमात्मा हैं, जो अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं। महाप्रभु सद्प्रभु रूप में इसी प्रकार से शिष्यों के हृदयग्रन्थि का भेदन करते हैं। आनन्दकन्द करुणा वरुणालय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 120वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम में 12–13–14 अप्रैल को धूमधाम से मनाया जा रहा है। भारत व विदेश में जहाँ–जहाँ उनके भक्त व शिष्य हैं, श्री प्रभुजी का यह परम महोत्सव धूमधाम से मना रहे हैं।

अष्टांग योग

डा. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ (भाग 3)

योगीश्वर श्रीकृष्ण ने भी अपने मुखारविन्द से गीता में अस्मितानुगत समाधि प्राप्त करने वाले योगियों के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है कि:-

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।
यदा भूतपृथग्भावं एकस्थमनुपश्यति।
ततः एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।

अर्थात् अस्मितायोग से युक्त योगी समदर्शी हो जाता है, क्योंकि सब प्राणियों में वह उनकी अन्तरात्मा के रूप में अपने को देखता है और सभी प्राणियों को अपनी आत्मा में स्थित देखता है। यह आत्मतत्व ही परमात्मा है। इसी कारण योगी सर्वत्र परमात्मा को देखता है और सम्पूर्ण सृष्टि को परमात्मस्वरूप में स्थित देखता है। ऐसा योगी परमात्म भाव में सदैव लीन रहता है। उसकी दृष्टि में समस्त प्राणी परमात्मस्वरूप में स्थित हैं तथा परमात्मा से ही सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार हुआ है, अतः वह अपने को उसी सर्वव्यापक परमात्मस्वरूप में ही देखता है।

इस स्थिति के योगी को यह ज्ञान हो जाता है कि दृष्टा तथा दृश्य का संयोग अविद्या के कारण हुआ है। समस्त दृश्यों का केवल एक ही दृष्टा है और वह स्वयं ही है और वही परमात्मा के रूप में सभी क्षेत्रों को प्रकाशित करता है। इस प्रत्यक्ष ज्ञान की अनुभूति के परिणामस्वरूप योगी को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है और उसका निर्बीज समाधि में प्रवेश हो जाता है। परमात्मा के सगुणरूप श्रीकृष्ण ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है कि:-

यथा प्रकाशयति एकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवं अन्तरं ज्ञानचक्षुसा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुः यान्ति ते परम्।।

अर्थात् जिस प्रकार एक ही सूर्य सम्पूर्ण पृथ्वी लोक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही क्षेत्रज्ञ आत्मा समस्त क्षेत्रों यानि जड़-चेतन शरीरों को प्रकाशित करता है। जब

अस्मितायोग से सम्पन्न योगी इस क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के अविद्याजनित संयोग के रहस्य को जान जाता है तब वह जीवभाव की प्रकृति से मुक्त होकर परमपदस्वरूप निर्बीज समाधि में अपने परात्पर स्वरूप में स्थित हो जाता है।

महर्षि पतंजलि ने कहा है कि अस्मितानुगत समाधि में योगी को दो विशिष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती है, वह है:-

''ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'', ''तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी''

''निर्माणचित्तानि अस्मितामात्रात्''

अर्थात् प्रथम सिद्धि है **ऋतम्भरा प्रज्ञा**। यह प्रज्ञा केवल सत्य को धारण करती है। अतः इसका संस्कार अविद्याजनित भ्रान्ति के संस्कारों को नष्ट कर देती है जिससे प्रकृति तथा पुरूष के सम्पूर्ण रहस्य प्रकट हो जाते हैं। दूसरी सिद्धि है चित्तनिर्माण की शक्ति। ऐसा योगी संकल्पमात्र से अपने अनेक चित्तों का निर्माण करके एक समय में एक साथ अनेक शरीरों में कार्य व्यवहार कर सकता है। उसका प्रकृति के अवयवों पर अधिकार होता है, क्योंकि **''परमाणुपरममहान्तोऽस्य वशीकारः''** अर्थात् सभी अणु-परमाणुओं पर उसका अधिकार होता है। अतः प्रत्येक निर्मित चित्त इच्छानुसार शरीर ग्रहण कर लेता है तथा देश तथा काल की सीमा से मुक्त रहता है।

अस्मितायोग की सिद्धि के पश्चात् योगी का निर्बीज समाधि में प्रवेश हो जाता है जहाँ पर वह त्रिगुणातीत स्थिति में रहता है। महर्षि पतंजलि ने इस स्थिति को इस प्रकार परिभाषित किया है कि:-

''पुरूषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं चितेर्स्वरूपस्थितिः इति''

अर्थात् जब गुणों का कार्यव्यापार समाप्त हो जाता है तब वह अपने कारण मूलप्रकृति में लोप हो जाते हैं। इसी को कैवल्यावस्था अथवा चिदात्मा की स्वरूपस्थिति कहते हैं। भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि:-

प्रकृतिं पुरूषं चैव विद्धि अनादी उभौ अपि।
विकारान् गुणान्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।

अर्थात् प्रकृति तथा पुरूष दोनों ही अनादि है, किंतु सृष्टि को उत्पन्न करने वाले त्रिगुण तथा मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ पंच भूतादि उनके विकार प्रकृति में से प्रकट हुए है।

इस गुणातीत स्थिति का यह परिणाम होता है कि:-

''तदा परिणामक्रमसमप्तिः गुणानां'', ''ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः''

अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड तथा जड़-चेतन जगत की उत्पत्ति का कारण जो गुणों का परिणामक्रम है, वह भी समाप्त हो जाता है। इस परिणामक्रम के कारण उत्पन्न अविद्या के अभाव में स्वतः अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश के पंच क्लेश तथा उनसे उत्पन्न कर्माशय भी नष्ट हो जाता है। इसका परिणाम होता है कि:-

"तत: सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्य अनन्तत्वात् ज्ञेयमल्पम्"

अर्थात् सभी मल तथा आवरणों से मुक्त ज्ञान की अनन्तता के समक्ष सभी पूर्व अवस्थाओं के ज्ञान स्वल्प तथा तुच्छ हो जाते हैं, क्योंकि:-

"आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति"

अर्थात् आत्मज्ञान के पश्चात् अनन्त तथा अतिशय ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है गुणों की परतन्त्रता से मुक्ति कर्मबन्धन से मुक्ति, अविद्यादि क्लेशों से मुक्ति, देहाध्यास से उत्पन्न द्वन्दों से मुक्ति तथा परमात्मा के सच्चिदानन्दस्वरूप की प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का परम लक्ष्य था। इस लक्ष्य की सिद्धि ही कैवल्य की गुणातीत अवस्था है। जगदीश्वर श्री कृष्ण ने भी इसी गुणातीत अवस्था को जीवन की सार्थकता बताया है कि:-

नान्यं गुणेभ्य: कर्तारं यदा द्रष्टा अनुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मदभावं सोऽधिगच्छति।।
गुणानेतान् अतीत्य तीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुखैः विमुक्तोऽमृतमश्नुते।।

अर्थात् जब गुणातीत अवस्था को प्राप्त योगी यह प्रत्यक्ष अनुभव कर लेता है कि माया के तीन गुणों के अतिरिक्त अन्य सृष्टि का कर्त्ता है ही नहीं तब वह गुणों के प्रभाव से अपने को मुक्त पाता है और परमात्मभाव को प्राप्त कर लेता है। देह में रहते हुए भी जब वह माया के तीन गुणों के प्रभाव से अपने को मुक्त देखता है तब जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा आदि शारीरिक दुःखों से मुक्त होकर अमृत्व को प्राप्त कर लेता है तथा क्लेश-कर्म के विपाक से मुक्त होकर परमानन्दस्वरूप में आप्तकाम यानि

"नित्य: सर्वगत: नित्यतृप्त: नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव: विज्ञानं आनन्दं ब्रह्म" हो जाता है।

यदि समाधि की प्रज्ञा के प्रवाह को तीरों से दर्शाया जाय तथा समाधि के प्रत्यय को वृत की परिधि से दर्शाया जाय तथा वृत का केन्द्र आत्मतत्व हो तो निम्नांकित चित्र से समाधियों के

क्रियाक्षेत्र	करण शक्ति	गुणों के पर्व	समाधि-स्थिति
मनोमय कोष	मन तथा बुद्धि	विशेष	वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात
प्रज्ञा प्रान्तभूमि	प्रज्ञा	अविशेष	वितर्कानुगत असम्प्रज्ञात
विज्ञानमय कोष	प्रज्ञा	अविशेष	विचारानुगत असम्प्रज्ञात

क्रियाक्षेत्र	करण शक्ति	गुणों के पर्व	समाधि-स्थिति
प्रज्ञा प्रान्तभूमि	प्रज्ञा	लिंगमात्र	विचारानुगत असम्प्रज्ञात
आनन्दमय कोष	प्रज्ञा	लिंगमात्र	आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात
प्रज्ञा प्रान्तभूमि	प्रज्ञा	अलिंग	आनन्दानुगत असम्प्रज्ञात
आत्म तत्व	चिदि-शक्तिमय ऋतम्भरा प्रज्ञा	अलिंग	अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात
चिदिस्वरूप	चिदि शक्ति	गुणातीत	निर्बीज

■ ■ ■

प्रभु तेरी लीला अपरम्पार

मोहन स्वरूप योगी
(गोवर्धन)

प्रभू जी तेरी महिमा अपरम्पार
गुरुजी तेरी महिमा अपरम्पार
चलो जी सभी सिद्ध गुफा के द्वार,
जहाँ विराजत प्रभू रामलाल, चन्द्रमोहन करतार,
प्रभू जी तेरी महिमा अपरम्पार,
चन्द्रमोहन में आनन्द सो है,
बाकी सब बेकार,
चलो जी सभी सिद्ध गुफा के द्वार,
जनम जनम की ओढ़ी चुंदरिया,
जैसे छायी कारी बदरिया
उज्जवल करो जगतार
प्रभू जी तेरी महिमा अपरम्पार,
स्वरूप तेरा गूंगा बहरा,
अब कौन सुने करतार,
प्रभू जी तेरी महिमा अपरम्पार,
चलो जी सभी सिद्ध के द्वार।

नववर्ष 2008 पर शुभकामनायें

Greetings for the New year- 2008

– डी.पी. शर्मा (लखनऊ) –

1. संस्कृत भाषायाम्:–

उल्लंघ्य कक्षां गतवत्सरस्य, वर्षे नवीने वयमागता इह।
स्वयं वयं केवलमेव विद्मः, गतो हि कालः कतमो व्यतीतः।।
नव्यं नवं सर्वजनोऽभिकांक्षते, भव्याय कामाय जनः प्रतीक्षते।
प्रियेषु मनुजः प्रियतामभीप्सते, तेभ्यः सदा स्वस्ति शुभं समीहते।।
याचे भवदभ्यः किं विश्वनाथात्, स्वयं समेषां प्रददाति नित्यम्।
तथापि याचे भवतां कृतेऽहम्, आरोग्यमायुष्यमनाविलं यशः।।

2. हिन्दी में

एक वर्ष की अवधि पार कर, नये वर्ष में हम आये हैं।
हम ही स्वयं जानते सब कुछ, कैसा समय बिताये हैं।।
नया चाहते हैं सब ही जन, उच्चाकांक्षा करते रहते।
स्वजनों हित भी इष्ट चाहते, मंगल–चिन्तन मन से करते।।
विश्वनाथ से तब हित में क्या, माँगूं वे तो सबके दाता।
माँगूंगा तब हित उनसे यह, सायुष्–धन–यश दें बन त्राता।।

3. English Version

Crossing the orbit of the year past,
Entering we now the year New.
Solely and only we perceive,
The past periods clear view.
Each and everyone expects new & novel,
Longs for an excellent longing.
The man wishes every good for nears & dear ones,
Desires good omens with finest thinking.
What should I beseech for you from the Lord of the Universe,
While He Himself bestows upon all at all times,
I would even then pray for yourself,
To confer fitness of body, longevity with name fame all sublimes.

यौगिक प्रश्नोत्तरी

साधकों के प्रश्न एवं उत्तर श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा

आचार्य पूर्णचन्द्र पन्त

प्रश्न– परम पूज्य गुरुदेव! प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। बुद्धिवादी होने के कारण मनुष्य विशेष रूप से अनादि काल से सुख की खोज में रहा है, किंतु गहराई से देखने पर पता चलता है कि सुखी कोई भी नहीं है। मनुष्य बाहर से देखने पर भले ही सुखी क्यों न नजर आये किंतु वह किसी न किसी रूप में दुःखी ही होता है। कृपा करके यह बतलाइये कि मनुष्य जीवन में दुःख कौन–कौन से हैं और उनका क्या कारण है?

उत्तर– हे पुत्र! तुम ठीक कहते हो कि संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी अपने को दुःखी समझता है और दुःख निवृत्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा करता है। सुख की दुराशा लिए वह तरह–तरह के भोग साधनों को जुटाता रहता है, किंतु उसके हाथ दुःख के अतिरिक्त कुछ नहीं आता। वह जिन–जिन विषयों को सुख के लिए अपनाता है, परिणाम में वे सब दुःख रूप ही होते हैं।

महर्षि पतंजलि देव जी महाराज ने दुःख का स्वरूप समझाते हुए अपने योग दर्शन में लिखा है– **"परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।"**

सूत्र का अर्थ है– परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख और गुणवृत्ति विरोध रूप दुःख के कारण विवेकी पुरुष के लिए यह सारा संसार दुःखमय ही है। यों तो संसार में दुःख ही दुःख है किंतु ये चार प्रकार के दुःख ही सभी दुःखों के मूल कारण हैं।

इनमें से कुछ दुःख परिणामी दुःख हुआ करते हैं। अर्थात् इन्द्रियों की चपलता वश हम जिन भोग साधनों को अपने सुख के लिए स्वीकारते हैं वे भोग काल में तो सुखदायी प्रतीत होते हैं किंतु परिणाम में वे अत्यधिक दुःख के दाता होते हैं। इस प्रकार के दुःखों को परिणाम दुःख कहा गया है।

गीता के पाँचवें अध्याय के बाइसवें श्लोक में तथा अठारहवें अध्याय के अड़तीसवें श्लोक में परिणाम दुःखता का स्वरूप समझाते हुए भगवान श्री कृष्ण जी ने कहा है–

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते,
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।

इंद्रिय और विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले जितने भी सुख हैं वे सब नाशवान है और दुःख के देने वाले हैं। इसलिए विवेकी मनुष्य उनमें नहीं रमता।

विषयेनिन्द्रयसंयोगा यत्तदग्रेऽमृतोपमम्,
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।

जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है वह यद्यपि भोग काल में अमृत के समान मधुर लगता है, किंतु परिणाम में विष के सदृश भयानक होता है, इसलिए वह सुख राजस सुख कहलाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त लौकिक सुखों के अन्दर परिणाम दुःखता छिपी रहा करती है, जिन्हें मनुष्य मोहवश अनुभव नहीं करता।

दूसरे प्रकार का दुःख ताप दुःख कहलाता है। इस दुःख के अन्तर्गत चित्त में उत्पन्न होने वाले इन्द्रियों के राग–द्वेष आते हैं। किसी प्रकार की कामना की पूर्ति न होने पर मन में जो एक गहरी जलन हो जाती है, इसी का नाम ताप दुःखता है। सभी प्रकार के सुख विनाशशील हैं। भोगकाल में उनके विनाश की सम्भावना से भी मन में एक प्रकार की व्याकुलता बनी रहती है। इसके साथ ही सुख का साधन जो भोग सामग्री किसी व्यक्ति को प्राप्त है वही दूसरों को उससे बढ़कर प्राप्त है, यह देखकर भी मनुष्य ईर्ष्या से जलता रहता है। इसी को ताप दुःख कहते हैं।

तीसरे प्रकार के दुःख में **संस्कार दुःख** आता है। जिस समय सुख संस्कारों का भोग काल उपस्थित होता है। उस समय सुख संस्कार ही अधिकांशतया सम्मुख आया करते हैं। प्राणी जिन संस्कारों में सुख का अनुभव करता है उस समय उसकी वह सुख संस्कारानुभूति है, किंतु यह अनुभूति सदा कायम नहीं रहती। सुख संस्कारों का भोग काल समाप्त हो जाने पर उन सुखों की स्मृति ही दुःखों का कारण बन जाया करती है। इसके साथ ही सुखोपभोग के संस्कार भोगासक्ति को बढ़ाते रहते हैं। अतः वे अगले जन्मों में भी दुःख के ही हेतु बनते हैं।

चौथे प्रकार का दुःख **गुण वृत्ति विरोध** नामक दुःख कहलाता है। गुणों के कार्य का नाम गुणवृत्ति है। सारा संसार–सत, रज, तम इन तीन गुणों पर आधारित है। गुणों के कार्य परस्पर विरोध है। सतोगुण का कार्य प्रकाश, ज्ञान और सुख है तो तमो गुण का कार्य अज्ञान, अन्धकार और दुःख है। तीनों गुण साथ–साथ रहते हैं, एक प्रधान रहता है। इस प्रकार सुखों को भोगते हुए भी दुःख और सुख बने रहते हैं। गुण वृत्ति विरोध एक ऐसा दुःख है जो मनुष्य के अन्तर्तम में हमेशा द्वन्द्व मचाये रखता है और उसे किंकर्तव्य–विमूढ़ बनाये रखता है।

इसी प्रकार पिता यदि सतोगुणी है और पुत्र रजोगुणी है तो उनका परस्पर स्वभाव नहीं मिलता और आपस में विरोध बना रहता है। पिता अपने को ठीक समझता है और पुत्र को अपने समान बनाना चाहता है किंतु पुत्र अपने को ही ठीक समझता है और पिता को ही गलत समझता है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे में दोषारोपण करते हुए दुःखी रहा करते हैं। यह गुण वृत्ति विरोध पिता–पुत्र में, भाई–बहन में, पति–पत्नी में और यहाँ तक की गुरु–शिष्य में समान रूप से दिखाई पड़ता है।

इन दुःखों के अतिरिक्त कुछ इस प्रकार के दुःख भी हैं जो कि मनुष्य को प्रकृति की ओर से प्राप्त होते रहते हैं। ये दुःख आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख कहलाते हैं।

आध्यात्मिक दुःख :– शारीरिक और मानसिक कष्ट आध्यात्मिक दुःख कहलाते हैं। शरीर का रोगग्रस्त हो जाना ही शारीरिक कष्ट अथवा व्याधि कहलाता है तथा काम, क्रोधादि

विकारों से मन का अशांत बना रहना मानसिक कष्ट अथवा आधि कहलाता है। इन दुःखों से ग्रसित होकर मनुष्य अपने जीवन काल में भी मृतक के समान बना रहता है।

आधिभौतिक दुःख :– शेर, व्याघ्र, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक जन्तुओं से पैदा होने वाला दुःख आधिभौतिक दुःख कहलाता है। इस दुःख से भी प्राणी भयभीत बना रहता है।

आधिदैविक दुःख :– ग्रह, नक्षत्र आदि से प्राप्त होने वाला दुःख आधिदैविक दुःख कहलाता है। सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि दुःख भी इसी श्रेणी में आते हैं, किंतु मनुष्य इन दुःखों को सहने का इतना आदी बन गया है कि वह इन दुःखों को दुःख नहीं समझता।

जन्म–मृत्यु का दुःख :– यह दुःख पूर्वोक्त सभी दुःखों से सबसे अधिक कष्टप्रद और भयानक है। जन्म से पूर्व जीव नौ मास तक माता के गर्भ में घोर नारकीय यातनायें भोगता है। उस समय उसे अपने पूर्व जन्मों का पूर्ण ज्ञान होता है। अतः वह भयभीत होकर कहता है मैंने अब तक तरह–तरह के आहार खाये, अनेक प्रकार के स्तनों का दुग्ध पिया, बार–बार जन्म लिया और मृत्यु को प्राप्त होता रहा हूँ। अपने कुटुम्बी जनों के लिए मैंने जो कर्म किये उनके कारण मैं कष्ट भोग रहा हूँ। ओह! मैं इस दुःख सागर में पड़ गया हूँ, इससे निकलने का कोई उपाय नजर नहीं आता। इस प्रकार घोर कष्ट का अनुभव करता हुआ वह तरह–तरह की प्रतिज्ञा करता है, कि यदि मैं इस बार किसी प्रकार योनि द्वार से बाहर निकल जाऊ तो भगवान महेश्वर की शरण लूंगा ताकि वे मेरे पापों का नाश करके मुझे मुक्ति दे दें। मैं भगवान नारायण की शरण लूंगा, मैं सांख्य योग का अभ्यास करूंगा तथा सनातन ब्रह्म का ध्यान करूंगा आदि–आदि। ऐसी प्रतिज्ञायें करता हुआ वह बड़ी कठिनता से जन्म ले पाता है और उसी क्षण भगवान विष्णु की त्रिगुणात्मिका माया का स्पर्श पाते ही वह सब कुछ भूल जाता है।

मरण का दुःख इससे भी अधिक भयंकर है। मनुष्य मृत्यु का नाम सुनते ही भयभीत हो उठता है। शरीर से प्राण निकलते समय जीवात्मा को एक हजार बिच्छुओं के एक साथ डंक मारने के समान भीषण वेदना होती है। उस समय वह महाअंधकार में भटकता हुआ सोचा करता है– सूर्य का प्रकाश, वायु का सुखद स्पर्श, मेरा घर तथा मेरे कुटुम्बी कहां चले गये? पता नहीं मैं किस दुःख में फंस गया हूँ, मुझे न कुछ दिखता है, न कुछ सुनाई देता है, न किसी का स्पर्श होता है और न मेरी भूख–प्यास ही शांत होती है। अब मैं क्या करूं, किसकी शरण में जाऊं? इस प्रकार तड़पता रहता है और दुबारा वही जन्म का दुःख उसे भोगना पड़ता है। इस प्रकार विवेकी पुरुष के लिए इस संसार में दुःख के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। अतः बुद्धिमत्ता इसी में है कि मनुष्य अपने जीवन काल में ही आत्म कल्याण के लिए पुरुषार्थ करे और उपरोक्त दुःखों से सदा–सदा के लिए मुक्त हो जाए। अखिल लोक पावन भगवान श्री कृष्ण चन्द का आदेश है:–

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

अर्थात मनुष्य को चाहिए कि वह अपने पुरुषार्थ द्वारा अपना संसार सागर से उद्धार करें

और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुँचायें। क्योंकि यह जीवात्मा स्वयं ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु।

प्रश्न:– पूज्य गुरुदेव! आपने दुःखों की व्याख्या करके मुझ मूढ़ पर असीम कृपा की है। आपके सदुपदेश से मेरे हृदय में वैराग्य के भाव जाग्रत हो रहे हैं, कृपा करके यह भी बतला दीजिए कि वह कौन सा ऐसा साधन है जिसको अपना लेने से मनुष्य समस्त लौकिक दुःखों से सदा–सदा के लिए छूट जाए और परम कल्याण का भागी बन जाए?

उत्तर– हे पुत्र! सुनो– दुःखों से छूटने का एक मात्र उपाय योग ही है। क्योंकि सभी प्रकार के दुःख पूर्व संचित पापों के परिणाम स्वरूप आया करते हैं और योगाभ्यास मनुष्य को निष्पाप बनाता है। ध्यान बिन्दूपनिषद में कहा गया है–

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो मेत्ता कदाचन।।

कई योजन दूर तक फैला हुआ पापों का पहाड़ का पहाड़ ही क्यों न हो वह भी ध्यानयोग के द्वारा नष्ट हो जाता है। पापों के नष्ट होने का और कोई उपाय नहीं है।

योग साधना द्वारा जब मनुष्य आत्मसाक्षात्कार कर लेता है तब उसके सभी प्रकार के शुभाशुभ कर्म जो सुख–दुःख के दाता है, समाप्त हो जाते हैं। जिससे वह दुःखों से छूटकर सदा रहने वाले सुख को प्राप्त कर लेता है। जगदात्मा श्रीकृष्ण जी ने गीता में समाधिजन्य उस असीम सुख का वर्णन करते हुए कहा है–

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरूणापि विचाल्यते।।
तं विद्याद् दुःख संयोग वियोगं योग संज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।

परमात्मा की प्राप्ति रूप जिस अलभ लाभ को पाकर मनुष्य उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता वह पूर्णकाम हो जाता है। उसकी दृष्टि में इस लोक और परलोक के समस्त भोग तथा मान प्रतिष्ठा सब नगण्य हो जाते हैं। जिस परमानन्द में स्थित हुआ योगी महान से महान दुःख से भी विचलित नहीं होता जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है वह योग साधना न उकताये हुए चित से धैर्य पूर्वक, उत्साहपूर्वक श्रद्धा एवं विश्वास पूर्वक करनी चाहिए। क्योंकि दृष्टा (जीवात्मा) और दृश्य (बुद्धि) इन दोनों का जो अज्ञान जनित सम्बन्ध है वही सभी प्रकार के दुःखों का मूल कारण है। नित्य शुद्ध–बुद्ध, सदैव मुक्त तथा अविकारी आत्मा का बौद्धेय धर्मों को अपनाकर अपने को दुःखी–सुखी, बद्ध एवं मरणधर्मा समझना ही जड़ चेतन की गाठ है, जब तक यह गाठ खुल नहीं जाती तब तक दुःख दूर नहीं हो सकते। दुःखों की निवृत्ति के लिए यह आवश्यक है कि साधक हमेशा योग साधना में लगा रहे। योग साधना के द्वारा ही मनुष्य दुःखों से सदा–सदा के लिए छूट सकता है।

■■■

उपनिषदों में परम सत्य के उद्‌गार

– डा. विजय सिंह –

संसार हमारे इन्द्रियों द्वारा अनुभव में आता है। परंतु आत्मानुभूति की वास्तविकता इन बहिर्मुखी वृत्तियों के कारण अनुभव में नहीं आती। अत: उपनिषद, शास्त्रों के ज्ञाता तथा आत्मा को जाने हुए में फर्क करता है। श्वेतकेतु का आख्यान आता है। गुरु आश्रम में रहकर श्वेतकेतु वेदों का बड़ा ज्ञानी बनकर पुस्तकीय बोध के साथ जब घर लौटता है तो पिता उससे जन्म, मृत्यु तथा पुनर्जन्म के ज्ञान के बारे में पूछते हैं। वह निरुत्तर रहता है। कठोपनिषद में स्पष्ट बताया गया है कि बुद्धिबल से (तर्क द्वारा) आत्मा का बोध नहीं होता, अपितु उसे अध्यात्मयोग से जाना जाता है। आत्म–बोध में पुस्तकीय–ज्ञान बेकार है:–

पुस्तकें लिखिता विद्या येन सुन्दरि जप्यते।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्प कोटिशतैरपि।।

यदि कोई बालकों की तरह अन्त:करण वाला, तत्परता से आत्मानुसंधान में सद्‌गुरु उपदेष्ट मार्ग का अनुसरण करता हुआ साधना करे तो वह आदि तत्व जो अपने को छिपाकर रखता है उसके सामने प्रकट हो जाता है। अत: कठोपनिषद में कहा गया है– परमात्मा की अनुभूति ईश्वर (सद्‌गुरु) कृपा से संभव है। आत्मा का सतत् दर्शन साधक के प्रयास (अभ्यास और वैराग्य) और सद्‌गुरु (ईश्वर) कृपा का फल है, देखें:–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुँ स्वाम।। 23।। कठ

उपनिषदों का मानना है– अज्ञान के कारण हम बद्ध है। ब्रह्म की आवरण शक्ति माया हमें अपने आत्मस्वरूप का बोध नहीं होने देती है। जबकि तत्वत: आत्मा एवं ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। जब हम अपने को शरीर इन्द्रियों, मन समझते हैं तब वह चेतन आत्मा–जीवात्म भाव में होता है। सर्व द्वन्द्वों से विमुक्त आत्मा, जीवात्मा के रूप में सब द्वन्द्वों का भोक्ता हो जाता है। सुख से सुखी, दु:ख से दु:खी होने लगता है। आत्मा ऐन्द्रिक एवं तत्जनित सर्व वेदनाओं से सर्वथा, सर्व समय मुक्त है। जीवात्मा की तीन अवस्थाओं का वर्णन उपनिषदों में आया है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। सर्वगत आत्मा इनसे अलिप्त है। मानव काया का बड़ा ही मनन् उपनिषदकारों ने किया है। स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण ये तीन भेद शरीर के बताये गये हैं। स्थूल शरीर पंचभूतों क्षिति, जल, पावक, आकाश, वायु द्वारा निर्मित व पोषित होता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से सूक्ष्म शरीर बना है। मन पंच कर्मेन्द्रियों– वाक, प्राणि, पाद, वायु, उपस्थ के द्वारा बोलने, लेने–देने, चलना–फिरना, मल–मूत्र त्याग एवं रति भोग का कार्य सम्पादित कराता है। मन ही पंच ज्ञानेन्द्रियों के विषय का बोध भी बुद्धि को कराता है। चक्षु, श्रोत, घ्राण, रसना और त्वचा के

कार्य बोध देखना, सुनना, सूंघना, स्वाद लेना और स्पर्श बोध मन में ही अनुभूति के कारक है। संक्षेप में मन द्वारा सम्पूर्ण क्रियायें संचालित हो रही है। वृहदारण्यक उपनिषद में इसका अत्यन्त विस्तार से विवरण आया है। पंच प्राणों का विवरण है – प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। प्राणों द्वारा स्थूल–शरीर की क्रियायें एवं जीवन जीवन्त है।

उपनिषदों में बड़े ही विज्ञान बुद्धि से पंच कोषों का वर्णन आया है। ये पंचकोष ही तीनों शरीरों स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण के पोषक आधार हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पाँच कोष बताये गये है। सही में ये ही हमारी आत्म चेतना पर आवरण (पर्दा) रूप है। जिससे हम निर्विकारी, निरंजन, निर्दोष आत्म सत्ता से अपरिचित है। योग सिद्धान्त में श्री सद्गुरु भगवान योगीराज चन्द्रमोहन जी ने तथा पातंजलि योग प्रदीप ने श्री ओमानन्द जी ने इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला है।

आनन्दमय कोष :– आत्मा पर पहला आवरण चित्त एवं कारण प्रकृति का है इसके कारण आनन्द, मोद, प्रमोद रहित आत्मा, आनन्द, मोद, प्रमोद वाली प्रतीत होती है। यही कारण शरीर है। कारण शरीर युक्तात्मा को प्राज्ञ नाम दिया गया है।

विज्ञानमय कोष :– आत्मा पर दूसरा आवरण अहंकार और बुद्धि का है। इसके द्वारा अकर्ता आत्मा कर्ता, अविज्ञाता, आत्मा विज्ञाता, गुणधर्मों से रहित आत्मा गुणधर्मी बन जाती है। अभिमान इस विज्ञानमय कोष का गुणधर्म है।

मनोमय कोष :– मन, ज्ञानेन्द्रिय एवं तंमात्राओं का सामूहिक कोष है। संकल्प–विकल्प, चिन्तन, अनुमान आदि कार्य गुणों के प्रभाव से प्रभावित होकर होते रहते हैं। विज्ञानमय तथा मनोमय कोष से सूक्ष्म शरीर गठित है। बुद्धि का सत्व भाग कारण शरीर में भी व्याप्त है।

प्राणमय कोष :– प्राण (पंच प्राण) और भूत द्रव्य 'स्थूल शरीर' में संगठित है। यह काया में तंत्रिकाओं, नाड़ी संजालों रक्त, मांस, वीर्य सब में व्याप्त गतिज एवं ज्ञानज संवेदनाओं का सम्वाहक है।

अन्नमय कोष :– रज–वीर्य के संयोग से तथा पंच महाभूतों के पोषण द्वारा तथा अन्न द्वारा स्थापित्व को प्राप्त स्थूल शरीर इसी अन्नमय कोषों से पुष्ट है। प्राणों का व्यवहार भी इन्हीं में होता है। शरीर में जीवित–अवस्था में यह ही अन्य शरीर (सूक्ष्म–कारण) को धारण किये रहता है। अन्न की बहुत महिमा तैत्तरेय उपनिषद में गायी गई है– स्थूल ब्रह्म अन्न ही है।

अतः हम अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द द्वारा निर्मित स्थूल शरीर उसके अन्दर सूक्ष्म शरीर और इसके अन्दर कारण शरीर में रहते हैं। प्राण ही आयु है। इन सबका आधार आत्मा है।

यह सभी ज्ञान, सत्य, मूर्ति सद्गुरु भगवान की कृपा से शिष्य को योगारूढ़ होने पर बोध में आता है। हमारी अन्तर्मुखता ही आत्मा पर पड़े तीनों आवरणों से परिचय कराती है। यदि हम संसार में ही वर्तन करेंगे तो इन सूक्ष्म जगतों का परिचय कदापि सम्भव नहीं होगा। इसी हेतु से सद्गुरु भगवान अपने दीक्षित अथवा सत्संगियों से बार–बार कहते– "नित्य नियमानुवर्तिता से

एकान्त में कुछ ही देर सही ध्यान किया करो। बनत–बनत बनि जाय। मण्डूक उपनिषद ध्यान तथा उत्साहपूर्वक किये अभ्यास की आवश्यकता पर जोर देता है।

ध्यान का आधार स्तम्भ सदाचार है। सदाचारी के नैतिक जीवन में ध्यान, समाधि फलित होता है। "**आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः**।" ध्यान से मानसिक हलचल रुकती है और हम नीरव–प्रशांत आत्म–सत्ता में निमग्न होने लगते हैं। तैत्तिरेय उपनिषद ब्रह्मचारियों के कर्तव्यों का निर्देश करती है। सत्य, सद्गुण, कल्याण, अभ्युदय, स्वाध्याय और सद्गुरु उपदेशों की अवहेलना ब्रह्मचारियों को कदापि नहीं करनी चाहिए। 'दम' आत्मनिग्रह, दान और दया ब्रह्मचारियों के नैतिक कर्तव्य हैं। संयम, चारित्रिक शुद्धता, एकान्त, मौन और ध्यान से आत्म–निग्रह प्राप्त होता है।

ब्रह्मपुराण में ब्रह्मचारियों को विजातीय द्रव्यों से कैसे बचना है, उसका उपाय बताया गया है:–

क्रोधं शमेन जयति, कामं संकल्पवर्जनात्;
सत्वसंसेवनाद् धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति।
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्, पाणि पादं च चक्षुषा;
चक्षुः श्रोत्रं च मनसा, मनोवाचं च कर्मणा।
अप्रमादाद् भयं जह्याद् दम्भं प्राज्ञोपसेवनात्।।

अर्थात्– क्रोध को मन के निग्रह से जीतना होगा, वासना को इच्छा त्याग से। सत्व गुण (जपकर्म से) के विकास से वह निद्रा पर विजय पाये। धैर्य से जननेन्द्रिय और उदर (भूख) की रक्षा करें। मन से नेत्र और कान की रक्षा करें। अपवित्र, उद्वेग पैदा करने वाले दृश्यों को न देखना, निन्दा, चुगली से बचना ही नेत्र एवं कान की रक्षा करना है। सदाचरण द्वारा उसे मन और वाणी की रक्षा करनी चाहिए। निरन्तर आत्मशक्ति के जागरण से सर्व भय को भगा देना चाहिए, प्राज्ञ पुरुषों की सेवा करके अपने अहंकार को जीतना चाहिए।

•

जब साधक नाम, रूप, देह, मन, बुद्धि आदि से अपने आप को सर्वथा पृथक समझ लेता है, तब वह ईश्वर की शरण और कृपा से देहादि सम्बन्ध से होने वाले समस्त क्लेशों और पापों से सदा के लिए सर्वदा मुक्त हो जाता है एवं विज्ञानानंदघन परमात्मा का सनातन अंश होने के कारण सदा के लिए प्रभु को प्राप्त हो जाता है।

सुख व शांति

– अंशुमानदेव मालवीय –

आज इस भौतिक युग में प्रत्येक मनुष्य अपने निजी स्वार्थों के चलते अपने जरूरत से अधिक धन अर्जित कर रहा है और उस धन से भौतिक वस्तु को खरीद कर व उपयोग कर अपना विकास मान रहा है। परंतु अपने अज्ञानतावश यह भूल चुका है कि वह जो धन, सम्पत्ति व वस्तुओं का संग्रह कर रहा है जिसमें वह अपना पूरा जीवन लगा दे रहा है, वह इसी जीवन तक सीमित है। इस संसार जगत में जहाँ मनुष्य का एकमात्र सहारा भगवत् नाम है तो क्यों न हम इस दुनियादारी के चक्कर को छोड़ कर अपने समस्त कार्य को धर्म के सन्मार्ग पर चलकर भगवत् नाम का संग्रह करें, क्योंकि इनके नाम के संग्रह असीमित है।

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायण स्मृतिः।।

जगत की विपत्ति, विपत्ति नही जगत की सम्पत्ति, सम्पत्ति नहीं, भगवान का विस्मरण ही विपत्ति है और भगवान का स्मरण ही सम्पत्ति है।

इस सम्बन्ध में एक घटना का वर्णन करना यहाँ उचित होगा। एक गाँव में एक बहुत ही धनी व्यापारी रहता था। उसका मान, सम्मान व प्रतिष्ठा की चर्चा दूर- दूर तक थी। वह जिधर से गुजरता था उसके सम्मान में लोग उठ खड़े होते थे। उसके पास धन, दौलत एवं ऐश्वर्य के सभी साधन मौजूद थे। इन सब चीजों के बावजूद भी उसके पास कमी थी तो यह कि सुख व शांति उसके पास नहीं थी।

उसी गाँव में दूसरी तरफ उसी धनवान व्यापारी के हवेली के सामने एक अति निर्धन किसान रहता था। जिसके पास रहने के लिये एक टूटी–फूटी झोपड़ी थी, पहनने के लिए एक फटा पुराना कपड़ा था और किसी तरह से उस निर्धन का गुजारा चल रहा था, लेकिन इतनी गरीबी में रहने के बावजूद वह बड़े ही सुख व शांति से रहता था।

धनवान व्यापारी इस निर्धन किसान को अक्सर देखता था और यह सोच कर परेशान रहता था और सोच में डूब जाता था कि आखिर इस निर्धन के पास कुछ भी न रहते हुये भी वह इतना सुखी क्यों है।

एक दिन उस धनवान ने यह निर्णय किया कि वह उस निर्धन किसान के घर जाये और अपने मन में उठे प्रश्न का जवाब उससे पूछे और तब उसके घर धनवान जा पहुँचा और उसने पूछा उस किसान से, "अरे भाई आप मुझे यह बताये कि मेरे पास धन, दौलत व ऐश्वर्य के सभी साधन मौजूद होने के बावजूद मुझे सुख व शांति नहीं है और तुम एक मामूली किसान व निर्धन होने के बावजूद भी ऐसे रहते हो जैसे कि बहुत ही सुखी व समृद्ध हो आखिर ऐसा क्यों?"

तब किसान बोला, "सेठ जी मैं एक गरीब किसान जरूर हूँ, मेरे पास धन व दौलत न हो, परंतु मेरे पास भगवत् नाम का संग्रह व संतोष है जो कि मुझे अन्दर से यह प्रेरित करता है कि मैं ईमानदारी, सच्चाई व मेहनत से अपनी अजीविका चलाऊँ और किसी को पीड़ा न पहुँचाऊँ।"

सेठ जी जो सम्पत्ति दूसरों को पीड़ा देकर संग्रह की जाती है, वास्तव में वह कभी सुख का कारण नहीं बन सकता है। इसका दुष्परिणाम मनुष्य को भोगना ही पड़ता है और ऐसे धन से मनुष्य सिर्फ धनवान ही बन सकता है। परंतु अपने मूल वक्तव्य अपने मुख्य उद्देश्य को नहीं पा सकता है क्योंकि धन को धर्म के सन्मार्ग पर चलकर ही प्राप्त करना मनुष्य के लिये उचित एक मात्र सरल उपाय है और इन बातों को ध्यान में रखते हुये धन को अर्जित करना चाहिये तथा धनवान को धन का सदुपयोग परोपकार की भावना से खर्च करना चाहिये। उदाहरण – जैसे कि सड़क किनारे रिक्त स्थानों पर वृक्षारोपण करवाना, प्याऊ लगवाना, अन्न क्षेत्र चलवाना, गरीब छात्रों के लिये पाठशाला का निर्माण करवाना इत्यादि कार्यों को करना धनवान का मुख्य कार्य है क्योंकि धन हमें अपने इसी समाज से मिला है और इस समाज के लिये धर्म का कार्य करना भी हमारा परम कर्तव्य है।

धनवान व्यापारी उस निर्धन किसान की बात सुनकर गद्‌गद् हो गया और उसकी आँखों से आसू गिरने लगते है। अब उसे अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझ में आ जाता है। और वह उस निर्धन किसान के गले लग जाता है।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा यह सविनय निवेदन है कि लेख की त्रुटि को ध्यान न देकर इसके पवित्र भावों को ग्रहण करें तथा सद्‌गुरु देव भगवान को ही एकमात्र सहायक मानकर आरती–पूजन एवं कृपा चरित्र का वर्णन सदैव करें।

■■■

कैसे उद्धार कर पाओगे? अनाथो के नाथ जी!

प्रेषक–**कुन्दनलाल अग्रवाल** रूद्रपुर, ऊधम सिंह नगर

व्याधि औ अजामिल से ज्यादा हूँ असाधु नाथ,
मेरे ढेर पापों का न प्रभु पार पाओगे।
शबरी न केवट, न शूद्र और अहिल्या हूँ मैं,
जो कि दे के प्यार, धर पैर तार जाओगे।
ग्राह से भी अधिक गुनाह है हमारे प्रभु,
गिन–गिन करके ही आप हार जाओगे।
त्यागा सती सीता को भी, झूठे ही कलंक पै तो,
कैसे तुम 'दीन' का उद्धार कर पाओगे।

दास हूँ मैं पतितों का महापातकी हूँ नाथ,
कैसे भवसागर से पार कर पाओगे।
अधम से अधम महान नीच हूँ मैं नाथ,
कैसे अपराधी का सुधार कर पाओगे।
पाप कर्म जीवन में करता सदैव रहा,
कैसे आप मेरा उपकार कर पाओगे।
इस बार कठिन परिस्थिति का सामना है,
देखें किस भाँति से उद्धार कर पाओगे।

रामचरित मानस और गुरु भक्ति

– वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर) –

सनमुख होई जीव मोहिं जबहीं।
कोटि जनम अघ नासैं तबहीं।।

अर्थात् सद्गुरुदेव कहते हैं कि यह जीव जब मेरी ओर मुँह कर लेता है, सब ओर से अपना मन हटाकर मुझमें लगा देता है, मेरे स्वरूप पर ही अपनी दृष्टि जमा लेता है, उसी समय इसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू।।
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के।।

सद् गुरु भगवान के नाम का सुमिरन सबके लिए सहज ही सुखदाई है। इस लोक में सुख–लाभ और परलोक में भी आनन्द प्राप्त होता है।

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरहु जो चाहसि उजियार।।

अर्थात् सद्गुरु से दीक्षा द्वारा प्राप्त नाम रूपी दीपक मणि दीपक है, यह मणि दीपक दिया, तेल बत्ती के बिना ही प्रकाश देता है। दीपक के बिना ही प्रकाश देता है, दीपक के प्रकाश जैसी गर्मी इसके प्रकाश में नहीं होती, यह शीतलता प्रदान करता है। आंधी–पानी का इस पर कोई असर नहीं पड़ता।

यहाँ भीतर–बाहर का भाव है लोक–परलोक, परा–अपरा, विद्या–अविद्या का क्षेत्र। इसी शरीर से संसार का बाहरी काम–धाम भी देखना है, प्रारब्ध का सुख–दुःख का भोग भी भोगना है तथा इसी शरीर में दोनों भौंहों के ऊपर मस्तक के भीतर पराविद्या के क्षेत्र में, सहस्रार चक्र पर सहस्त्रदल कमल पर बैठे हंस के उपर विराजमान मेरे–प्राणाधार परमात्मा सद्गुरुदेव का दर्शन भी करना है। अतः पराक्षेत्र के प्रवेशद्वार की देहली पर नाम रूपी मणि दीपक को रख दो। इससे बाहरी लौकिक कार्यों में सरलता से सफलता भी मिलती रहेगी, सुयश भी प्राप्त होगा तथा भीतरी परा के क्षेत्र में भी पहुँच हो जायेगी।

नाम जीव जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।
जानहिं सहहिं दुसह दुख जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ।।

अर्थात् ब्रह्मा के प्रपंच से विरक्त होकर अपने इष्ट के वियोग में कष्ट पाते हुए योगीराज, त्यागी भक्त अपनी सांसों से नाम का जप करते हुए मोह–निशा में भी जागते रहते हैं क्योंकि इष्ट दर्शन का यही एक मात्र सरलतम् सुनिश्चित मार्ग है और जो जिज्ञासु भक्त है भगवान की लीला

की गूढ़ता से परिचित होना चाहते हैं।

वे भी नाम को सांस (जीह–जीव, प्राणवायु) द्वारा जपकर उन लीलाओं अथवा चरित्रों की गूढ़ता को यथार्थ रूप में जान लेते हैं।

साधक नाम जपहि लव लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये।।

जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।।

अर्थात् धन चाहने वाले, अर्थार्थी साधक या भक्त भी यदि लौ अर्थात लगन लगाकर, सद्गुरु के स्वरूप को मन में जमाकर नाम का जप करते हैं तो अणिमा–महिमा आठ सिद्धियाँ तथा शंख–नील आदि नव निधियाँ पाकर सिद्ध हो जाते हैं। किसी सांसारिक संकट से ग्रस्त आर्त भक्त अतिशय पीड़ित होकर यदि नाम जप करने लगता है तो उसका भारी से भारी संकट मिट जाता है, सारी विपत्ति अपने आप दूर हो जाती है।

बहुँ जुग बहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेष नहिं आन उपाऊ।।

अर्थात नाम का यह उपर्युक्त प्रभाव चारों वेदों में वर्णित है, चारों युगों में सद्गुरु से प्राप्त नाम के जप से लोग लाभ उठाते हैं पर कलियुग में विशेष रूप से दूसरा कोई उपाय नहीं है। जिससे लोगों को लोक–परलोक का सुख मिल सके। यदि अक्षय आनन्द चाहते हो, तो सद्गुरु रूपी मन्त्र को अमृत–प्याला बनाकर पी डालो।

कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।।

अतः कलियुग में तो सद्गुरु से प्राप्त नाम के भजन के अतिरिक्त प्राणी के कल्याण का कोई उपाय नहीं रह गया है।

मोरे मत बड़ नाम दुहुँते। किये जेहि जुग निजबस निज बूते।

उभय अगम जुग सुगम नामते। कहेऊँ नाम बड़ ब्रहम राम ते।।

अर्थात् गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं कि:–

साधक केवल प्रेम पूर्वक नाम–स्मरण ही करता चला जाये तो उचित समय पर उसी के प्रभाव से मन में वैराग्य जाग जायेगा, योग–क्रिया सम्पन्न हो जायेगी और भीतर निरन्तर सहज रूप से जप होने लगेगा। विषयों से मन हटाकर ज्ञान–ध्यान द्वारा विश्वात्मा सद्गुरु देव से एकाकार होने की चाह पूरी करने के लिए सद्गुरु से प्राप्त नाम का सुमिरन उन्हीं के द्वारा बताई विधि से करना परम आवश्यक है।

सुमिरि सुमिरि गुन ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।।

अर्थात् अपने इष्ट के गुणों का बार–बार स्मरण करके अपने हृदय में उनके प्रति प्रेम बढ़ाओ। सच्ची दीनता गुरु कृपा से प्राप्त होती है।

प्रभु ! पार उतार मुझे

आर. बी. श्रीवास्तव
'चन्द्रानन्द',
ग्वालियर

प्रभु रामलाल, दयाल, कृपा करके,
भवसागर से पार उतार मुझे।
तेरे प्यार में इतना खो जाऊँ,
पागल समझे, ये संसार मुझे।।
सुध बुध न रहे इस तन की,
जग का न कोई बन्धन हो।
जिस तरफ जाए ये नजर मेरी,
बस तेय हो दर्शन, तेरा वन्दन हो।।
सब कुछ भुलूं, तेरी याद में झूँलू,
मिल जाए मस्ती की इक धार मुझे।
तेरे प्यार——
जप–तप में मन लीन रहे,
चरणों में नित ध्यान रहे।
डूबार हूँ नित 'चन्द्रानन्द' में,
बस सिद्ध गुफा का भान रहे।।
योग कमाई दिन दूनी बढ़े।
डुबा न सके कोई मझधार मुझे।
तेरे प्यार में———
या जिस हाल में भी तू रखे,
हो वह सब स्वीकार मुझे।
जग में न चाहत हो कुछ भी,
हो बस, तब दर्शन की दरकार मुझे।।
तेरा गुण नित गाते–गाते,
पड़े सुनाई मधुर झनकार मुझे
प्रभु रामलाल दयाल, कृपा करके,
भव सागर से पार उतार मुझे।
तेरे प्यार में इतना खो जाऊँ,
पागल समझे ये संसार मुझे।।

योग में मन की प्रबलता

— डा. जे.पी. शर्मा —
पौंटा साहिब (हिमाचल प्रदेश)

योग में मन की प्रधानता होती है। मन हमारे शरीर का राजा है। मन से हमारे नित्य की शारीरिक क्रियायें संचालित होती हैं। मानव शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह, गुदा, मूत्रेन्द्रिय) और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, नाक, कान, जिव्हा, त्वचा) होती हैं। ये सभी दसों इन्द्रियाँ मन से ही संचालित होती हैं। जब तक मन नहीं चाहता तब तक कोई भी इन्द्री स्वेच्छा से काम नहीं कर पाती। अत: सभी दस इन्द्रियाँ मन के आधीन रहती हैं। दु:ख तथा सुख का आभास भी मन के द्वारा ही ज्ञात होता है। अत: मन को हम ग्यारहवीं इन्द्री भी कह सकते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय– रूप, रस, गन्ध, शब्द तथा स्पर्श है। रूप आँखों का विषय है। इसी प्रकार जीभ का रस, नाक का गन्ध, कान का शब्द तथा त्वचा का स्पर्श विषय है।

आँखों से रूप, सुन्दरता देख सकते हैं। जीभ से खाने का स्वाद जान सकते है। नाक से सूघ सकते है। कानों से शब्द सुन सकते हैं। त्वचा से गर्मी–सर्दी का अहसास कर सकते है।

शिव सकल्पसूत्र के अर्न्तगत मन को वश मे करने हेतु छ: मत्रों का प्रयोग तथा उसे सद्विचारों वाला बनाने का वर्णन मिलता है। प्रत्येक मत्र का अन्तिम चरण "तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु" है। अर्थात मेरा मन शिव संकल्प–परायण तथा अच्छे विचारों को धारण करने वाला है।

इन्द्रियाँ तथा मन एक ही हैं अर्थात मन सभी इन्द्रियों का एक समूह है। मन सभी इन्द्रियों पर शासन करता है। इन्द्रियाँ स्वय मे कुछ करने में स्वतत्र नहीं है। सभी इन्द्रियाँ मन के ही आधीन रहती है। अत: मन को वश मे कर लिया जाये तो इन्द्रियाँ स्वय वश मे हो जाती है। जो भी मन को वश में कर लेता है इन्द्रियाँ स्वय उसके वश मे हो जाती हैं। प्रसिद्ध कहावत है "मन जीता तो जग जीता" अत: विजयी वही है जिसने अपने मन को जीत लिया है तथा वीर भी वही है जिसने अपने मन पर काबू पा लिया है।

यथा:–

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
परमातम को पाइये, मन ही के परतीत।।

अर्थात हमारा मन हार गया तो हम हार जाते है और मन जीतने की चाह रखे तो हम जीत जाते है। अत: हार और जीत हमारे मन पर निर्भर होते हैं। एक तरफ आत्मा है तो दूसरी तरफ परमात्मा है। इन दोनों के मध्य मन एक सेतु का काम करता है। अर्थात मन रूपी सेतु के आसरे ही आत्मा परमात्मा को प्राप्त कर सकती है।

समुद्र में जिस तरह नदियाँ गिरती है जिससे समुद्र जल से भर जाता है उसी प्रकार मन भी इन्द्रियों से भरा रहता है। इन्द्रियों के बिना मन का अस्तित्व नहीं है। जीभ, कान तथा आँख ये तीनों इन्द्रियाँ मन को बहिर्मुखी बनाती है तथा मनुष्यों को सांसारिक विषय वासना में उलझाती है। अतः इन तीनों इन्द्रियों को वश में करके मन को अर्न्तमुखी बनाया जा सकता है। मन का मौन वाणी के मौन से उत्तम है। कुछ समय मौन धारणा करने से वाणी संयमित हो जाती है। मन की चंचलता दूर होती है तथा एक अद्‌भुत शक्ति का अनुभव होता है। अतः शब्दों का प्रयोग बोलने से पहिले तोलकर करें। हमारा मन विषयी है जिसे शुद्ध करना आसान नहीं है। मन को जप, तप, यम, नियम, स्वाध्याय, निष्काम कर्म तथा यौगिक प्राणायामों के द्वारा शुद्ध किया जा सकता है। यज्ञ, दान, दया, वेदों का अध्ययन तथा सत्य भाषण द्वारा मन को शुद्ध बनाया जा सकता है। तीर्थों के दर्शन, स्वाध्याय, तपस्या तथा सत्संग से मन शुद्ध रहता है। गुरु मंत्रों के जाप से मन सदा शांत–शुद्ध बना रहता है। मन एक तालाब की तरह है। तालाब के पानी में हवा के झोंकों से तरंगें उठती रहती है उसी प्रकार मन में भी तरह–तरह की भावनाओं की हिलोरें उठती रहती हैं।

मन और शरीर देखने में अलग–अलग मालूम होते है परंतु वास्तव में दोनों एक ही है। दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। मन के बिना शरीर कुछ नही कर सकता, उसी प्रकार शरीर के बिना मन भी कुछ नहीं कर सकता। अतः एक की प्रधानता पहचाननी चाहिये।

मन की गति बड़ी तेज है जिसकी तुलना अन्य किसी वस्तु से नहीं की जा सकती। आंधी–तूफान की गति भी मन की गति के समक्ष नगण्य है। मन क्षण–क्षण पल–पल हजारों लाखों मील दौड़ता है। एक जगह बैठे–बैठे हमारा मन कभी लाखों मील दूर स्थानों पर पहुँच जाता है तथा कभी मन अंतरिक्ष में तैरने लगता है। अतः मन की उड़ान महान है। मन मनुष्य के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है। मनुष्य का मन अगर काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्य पर विजय प्राप्त कर ले तो वह मनुष्य मोक्ष को आसानी से प्राप्त कर सकता है। अतः मन और शरीर में अटूट सम्बन्ध है। मन की शक्ति को पहचानने की कोशिश करनी चाहिये। मनः शक्ति हमारे शरीर को नियंत्रित करती है तथा दिव्य और आलौकिक शक्ति भी देती है।

मन की एकाग्रता का अपना विशेष महत्व है। एक ही कार्य में संलग्न दो व्यक्तियों को लीजिये। एक अधिक दक्ष होता है तो दूसरा कम। इसी प्रकार एक ही विषय के विद्यार्थी अलग–अलग अंक परीक्षा में प्राप्त करते हैं। कारण केवल एकाग्रता, तन्मयता तथा तल्लीनता का अभाव होता है। मन की शक्ति लगाकर काम करने पर सफलता मिलती ही है।

मन की धारणा तथा संकल्प शक्ति भी कार्य निष्पादन में सहायक होती है। परिस्थितियाँ सदैव एक सी नहीं रहती हैं तथा बदलती रहती है। परिवर्तन ही संसार को गतिशील बनाता है। अतः मन को सदैव परिवर्तनशील बनाना चाहिये। साधना तथा संयम के द्वारा भी मनुष्य अपने मन का परिष्कार कर सकता है। खाद्य–वस्तुयें भी मन को शुद्ध बनाती हैं। कहा जाता है– **''जैसा खाय अन्न वैसा बने मन''**। सात्विक आहार हमेशा मन को शुद्ध विचार देते है तथा तामसिक आहार मन को विनाशशील बनाते है। अतः मन की शक्ति का योग मार्ग में अत्यधिक

महत्व है।

कामी, क्रोधी तथा रोगी मनुष्यों का स्वभाव चिड़चिड़ा होता है। ऐसे लोगों के अच्छे विचार स्वभावतः नहीं होते। कहते हैं–"**मन चंगा तो कठौती में गंगा**" अर्थात जब मन शांत, शुद्ध होता है तो सर्वत्र शुभ ही शुभ है। अतः हमें अपने मन को सर्वथा शुद्ध बनाये रखना चाहिये तभी हमें योग में सफलता प्राप्त हो सकेगी।

●●●

अवतार दिवस पर विशेष

आ गया, राम नवमी महापर्व गुरुदेव एक विनय सुनाने को।
श्रद्धा से अर्पित पुष्प लिए, चरणों में शीश झुकाने को।।
नभ से आयी रवि प्रकाश प्रभु चरणों का अभिनन्दन करने को।
मधुर–मधुर मुस्कान हिलोरे लेती, त्रिभुवन जग पति वंदन को।।
वसुधा में छायी हरी क्रान्ति ऋतुराज शरद महोत्सव मना रहे।
मन्द–मन्द समीर भी चलती प्रभु चरणों में (चँवर) डुलाने को।।
प्रकृति ने, सम्मोहक बनकर अपना सौभाग्य मनाती हैं।
प्रथम दर्शन की लालसा जागी श्रद्धा सुमन चढ़ाने को।।
वाद्य–यन्त्र थे मधुर मनोहर रचना सब कला कौशल की थी।
पंक्तिबद्ध थे सभी शिष्य, सब बारी–बारी पूजन करते थे।
गुरुदेव के जय, जय कारों से सारा भू–मंडल गूंज उठा।।
परम् तत्व प्रभु व्यापक तुम हो, अतिशय अगम अगोचर हो।
श्री रामलाल प्रभुदेव आपको राम नवमी मंगलमय हो।।
अज्ञेय, पुरुष का अवतरण दिवस सब को मंगल मय हो।
गुरुदेव आपके चरणों में राम नवमी मह पर्व मंगल मय हो।।
आ गया, राम नवमी महापर्व गुरुदेव एक विनय सुनाने को।
श्रद्धा से अर्पित पुष्प लिए, चरणों में शीश झुकाने को।।

प्रेषक – वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर)

रामरती ही क्यों?

केशवदेव उपाध्याय

उपरोक्त शब्द हमारे–आप के आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के मुखारबिन्द के हैं तथा एक रहस्य का बोध कराने वाले हैं। श्री मुख ने उपरोक्त शब्द कब? क्यों? और किससे कहे थे, इसे समझना–समझाना ही इस कृपा चरित्र का उद्देश्य है।

सन् उन्नीस सौ सत्तासी अठासी के चैत्र सुदी नौमी के उत्सव को, जिस दिन हमारे आपके दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का प्राकट्य दिवस है और जिसे अनाथ नाथ श्री सद्गुरुदेव जी महाराज, श्री प्रभु जी श्री महाप्रभु अवतारोत्सव के उपलक्ष्य में योग महामेला के नाम से सम्बोधित करते रहे हैं; को स्वर्ण जयन्ती अवतारोत्सव वर्ष के रूप में बड़े ही धूम–धाम और उत्साह से मनाया था। इस वर्ष महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के इस शरीर (जिस स्थूल शरीर के स्वरूप का आरती–पूजन और ध्यान हमारे गुरुभाई–बहन करते हैं) से सम्बन्धित अवतार से लेकर लीलावसान तक की सम्पूर्ण घटनाओं तक को प्रदर्शित करने वाली एक दिव्य प्रदर्शनी भी लगाई गई थी, जिसका आयोजन आराध्यदेव की आज्ञा एवं इच्छानुसार हमारे इलाहाबाद मण्डल के भाई–बहनों ने हमारे अन्य मण्डली के आदरणीय गुरु–भाई–बहनों की मानसिक एवं शारीरिक सहायता एवं सहयोग से किया था। इस प्रदर्शनी का श्रद्धायुक्त भाव से दर्शन करने वालों की आध्यात्मिक स्थिति में अवश्य ही इजाफा हुआ होगा, ऐसी भावना है।

स्वर्ण जयन्ती योग महामेला के इस उत्सव में हमारे आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज कुछ विशेष ही आनन्दित एवं उत्साहित दिखाई दे रहे थे। वैसे अपने इन बाह्यदर्शी नेत्रों से आराध्यदेव की स्थिति का आकलन करना, मूर्खता की परकाष्ठा है, अतः आदरणीय विज्ञ एवं अनुभवी साधकों से अनुरोध है कि इसे अन्यथा न लेने की कृपा करें। मात्र उस समय की स्थिति का स्पष्ट वर्णन करने के लिए उपरोक्त शब्दों का सहारा लिया गया है। इस विशेष स्वर्ण जयन्ती अवतारोत्सव में विदेश से आने वाले साधकों की संख्या भी लगभग ग्यारह थी। इस उत्सव में अन्य वर्षों के अवतारोत्सव की अपेक्षा हमारे गुरुभाई–बहनों की संख्या लगभग दूनी थी। कारण यह था कि आराध्य देव श्री गुरुदेव जी महाराज पूरे बीते वर्ष अपने यौगिक प्रवचनों में यह रहस्य बतलाते रहे कि अगले साल की नौमी श्री प्रभु जी का स्वर्ण जयन्ती अवतारोत्सव है तथा सभी कार्यक्रमों में यह भी आज्ञा देते रहे कि समय निकाल कर तुम लोगों को इस विशिष्ट योग महामेला का आध्यात्मिक लाभ उठाना चाहिए। किसी–किसी अपने यौगिक प्रबन्धों में श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने यह भी संकेत दे दिया था कि श्री प्रभु जी के कई सिद्ध योगी बच्चे इस महोत्सव का दर्शन लाभ लेना चाहते हैं। अतः तुम लोग भी इस शुभ–अवसर का लाभ उठाने का भरसक प्रयास करना। इंतजार की घड़ियाँ खत्म हुईं एवं चैत्र का सन् उन्नीस सौ अठासी का समय आ

हो गया। इस साल का उत्सव नौ दिनों का था, जिसमें सप्तमी, अष्टमी एवं नौमी का उत्सव विशेष था।

श्री सवाई आश्रम में जिज्ञासु, आगन्तुकों, श्रद्धालुओं एवं हमारे गुरुभाई–बहनों के ठहरने के लिए बहुत जगह उपलब्ध है परंतु आश्रम के सभी आवास (हाल एवं कमरे) नवरात्र के तीसरे दिन तक पूर्ण रूपेण भर गये थे। छोटे–छोटे टेन्ट (छोलदारी) जिसमें लगभग दस प्राणी आसानी से निवास कर सकते हैं, श्री गुरुभवन के ठीक सामने वाले खेत में, श्री दादा गुरुदेव के द्वारा शक्तिपातित तालाब की मेड़ के पास तक लगे थे तथा भोजनालय के पीछे वाला खेत भी, जहाँ इस समय ट्यूबेल लगा है, टेन्ट से पूरी तरह भर गया है। सप्तमी के तिथि तक उपरोक्त वर्णित स्थान आगन्तुकों से पूरी तरह भर गया था एवं अवतारोत्सव दिवस को सभी बरामदें पूर्णरूपेण आगन्तुकों से खचाखच भरा हुए थे। इसके बाद भी आने वालों का ताता लगा हुआ था एवं जिसको जहाँ भी जगह मिली, अपना सामान रखकर पुण्य का भागी बन रहा था। उत्सव के कार्यक्रमों में जब भी आराध्यदेव प्रवचन करते थे तो यह संकेत देते थे कि सावधान मन से रहकर आश्रम की सेवा करो।

आराध्यदेव योगिराज श्री चन्दमोहन जी महाराज द्वारा यह स्वर्ण जयन्ती श्री महाप्रभु अवतारोत्सव खूब धूम–धाम से मनाया जा रहा था। प्रातः काल की आरती के बाद श्री गुरुदेव जी महाराज द्वारा श्री मद्भगवत गीता का पाठ कराया जाता था, उसके बाद एक घंटे का ध्यानाभ्यास कराया जाता था। तदन्तर श्री गुरुगीता का पाठ करते हुए श्री गुरुदेव जी महाराज सरल एवं सुबोध भाषा में आध्यात्मिक उदाहरणों के साथ, साधकों को हृदयस्त करा रहे थे। इन रहस्यों का बोध कराते हुए अराध्यदेव जी के द्वारा लिखित "आठ योगी" नामक पुस्तक से पूरा विवरण (कृपा चरित्र) जान सकते हैं तथा योगिनी रामरती बुआ जी के उद्धार की घटना का वर्णन श्रीगुरुदेव भगवान ने श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन की "समाधिस्था योगिनायाँ" नामक पुस्तक में सविस्तार लिखा है। नवागन्तुक इस सिद्ध योग दरबार से जुड़ने वाले साधक–साधिकाओं को त्रयलोक वन्दित श्री गुरुदेव भगवान योगिराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज द्वारा लिखित साहित्य को कम से कम एक बार तो अवश्य–अवश्य एकाग्र मन से पढ़ लेना चाहिए। इससे उनके साधनों का पथ सरल एवं सुगम्य हो जायेगा, यह ध्रुव सत्य है।

श्री मुख ने कहा कि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध चार भागों में बांटा जा सकता है।

पहला पक्ष यह है कि गुरु के अन्दर कोई आध्यात्मिक तत्व विद्यमान न हो परंतु अपनी सांसारिक प्रतिष्ठा एवं शाब्दिक ज्ञान द्वारा वह अपने को गुरु मान बैठा हो एवं लोगों को अपने भ्रामक माया जाल में फंसाकर उन्हें दीक्षा देकर मुक्त कराने का मिथ्या आश्वासन दे रहा हो। शिष्य भी उसकी बातों पर विश्वास कर दीक्षा ले लेवें कि अब तो हमने दीक्षा ले ली है एवं हम आवागमन के चक्र से छूटकर मुक्त हो जायेंगे। स्वयं कोई साधना और अभ्यास न करें, अपने गुरु में भी कोई श्रद्धा न रखता हो बल्कि मुक्ति दिलाने वाला कन्ट्रैक्टर समझता हो तो ऐसे गुरु–शिष्य का क्या भविष्य है, स्वयं समझ लेवें। ऐसे गुरु शिष्य के लिए कहाँ गया है:–

गली–गली में गुरु फिरे, कोई गुरु दीक्षा लेय।
स्वर्ग जाय या नरक में, हमें रुपैया देय।।

ऐसे गुरु–शिष्य की जोड़ी के उदाहरण की आवश्यकता नहीं है, इसको जानने का विचार आने पर अनेकों उदाहरण स्वयं उपस्थित हो जायेंगे।

दूसरा पक्ष यह है कि गुरुदेव पूर्ण ज्ञाता तो है परंतु शिष्य के कल्याण की कामना नहीं करता है साथ ही शिष्य श्रद्धा का पुतला है एवं अपने गुरुदेव को पूर्ण ईश्वर ही मानता है। ऐसे में शिष्य अपनी श्रद्धा के बल पर पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। इसका उदाहरण श्री गुरुद्रोण एवं श्री एकलव्य शिष्य की कहानी है। श्री गुरुद्रोण द्वारा दीक्षा से इंकार किये जाने पर अनुकरणीय श्रद्धा का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए आदरणीय एकलव्य ने जंगल में गुरु श्री द्रोण की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उससे दीक्षा ली (अपने काल्पनिक श्रद्धा भाव से) एवं संसार जानता है कि अपनी श्रेष्ठतम श्रद्धा के बल पर श्री गुरुद्रोण के सबसे प्रिय शिष्य अर्जुन से आगे निकल गया। परंतु इस घोर कलिकाल में ऐसा श्रद्धावान साधक मिलना असम्भव सा ही है।

तीसरा गुरु–शिष्य का सम्बन्ध इस प्रकार का है कि गुरुदेव सर्वज्ञाता हो एवं शिष्य बिल्कुल ही अपने गुरु के संबंध में अविश्वासी हो। ऐसे संबंधों में भी शिष्य परमगति का अधिकारी बन जाता है। श्री सवांई धाम आश्रम से संबंधित हमारे आदरणीय पुराने गुरुभाई–बहन इस तथ्य को अच्छी प्रकार से जानते हैं कि त्रयलोक पावन, स्वयं नारायण हमारे दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने जब दुराचारिणी बालिका रामरती को आदेश दिया की तुम्हें जो इस घृणित कार्य से प्राप्त होता है, इससे गुना सुख (आनन्द) हम तुम्हें अभी प्रदान करेंगे, तो उसे बिल्कुल ही विश्वास नहीं हुआ। बालिका रामरती ने कहा, "हमें आप की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है।" श्री दादा जी ने कहा, "हमारी बातों पर तुम्हें कैसे विश्वास होगा?" बालिका रामरती ने कहा, "इस नारायणी नदी के जल में खड़े होकर, हाथ में जल लेकर एवं जनेऊ पकड़ कर कहिए की आप सत्य कह रहे हैं, तब हमें विश्वास होगा।" धन्य है पतित पावन। उन्होंने वैसा ही किया, जैसा करने से चरित्रहीन बालिका रामरती को उनकी बातों पर पूर्णरूपेण विश्वास हो गया। तदन्तर दीन दुनियां के स्वामी श्री महाप्रभु जी ने उसे शराब की बोतलें फेंक कर, स्नान करने का आदेश दिया। जिसे उसने तत्काल पालन किया। उसके बाद उसे बैठने का आदेश दिया श्री महाप्रभु ने फिर उसके सिर पर अपना वरद हस्त रख कर महान चरित्रहीन ठाकुर परिवार की बालिका रामरती को एक पल में योगिनी रामरती बना दिया। अब तो यही कह के मन को श्रद्धालु बनाना है:–

बन्दौ क्या प्रभु कृपा की बात, जासु कृपा नहिं कृपा अघात

चौथा पक्ष यह है कि जिसमें शिष्य श्रद्धा का पुतला हो एवं गुरु भी सद्गुरु तत्व से परिपूर्ण हो। ऐसी स्थिति में एक क्षण में प्राणी मुक्त हो जाता है श्री सिद्ध गुफा सवांई आश्रम से सम्बन्धित गुरुभाई–बहन, आश्रम पर आने वाले जिज्ञासु आध्यात्मिक साधक एवं सेवक दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा बलिया जिले के एक बालक श्री हरिराम नन्द जी

महाराज बनाने वाले कृपा प्रसंग से अवश्य ही परिचित होंगे। यदि नवागन्तुक साधक इस कृपा चरित्र से अनभिज्ञ है तो आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज द्वारा लीखित "आठ योगी" एवं "समाधिस्था योगिनायें" नामक पुस्तकों का कम से कम दो–तीन बार अध्ययन एवं मनन कर लेवें।

आज स्वर्ण जयन्ती अवतार महोत्सव का सातवां दिन है। प्रातः काल से ही एक महिला जो बिल्कुल सफेद साड़ी एवं सफेद ब्लाउज पहने हुई है एवं जिसकी अवस्था लगभग पैंतीस वर्ष लग रही है, प्रातः काल से ही श्री सवाई धाम की प्रत्येक प्रकार की सफाई कर रही है। प्रातः काल पौने चार बजे उठने वाले साधकों ने देखा कि वह झाड़ू लगा रही है एवं सात बजे तक झाड़ू लगायी। स्नानागार (महिला एवं पुरुष) की सफाई की। भोजन प्रसाद लेने वाले, उन लोगों के जूठे पत्तल एवं पुरवा (कुल्हड़) जो पंगत में छोड़ दिये गये थे, उठाकर आश्रम के बाहर सड़क की दूसरी तरफ फेंक रही है स्नानागार की नालियां जाम होने पर उसके कूड़े–करकट हटाकर हाथ से साफ कर रही है। वह बिना किसी से बात किये, स्वयं की मस्ती में, शारीरिक थकावट से अप्रभावित रहकर अपना कार्य कर रही है। ऐसा लग रहा था कि इस मेले में उसका कोई परिचित नहीं है। यह कार्य उसने सप्तमी–अष्टमी एवं नौमी की तिथियों में किया।

श्री सवाई धाम से संबंधित हमारे गुरुभाई–बहन, आराध्यदेव जी के लाड़ले शिष्य, अच्छी स्थिति के योगाभ्यासी साधक हमारे आदरणीय गुरुभाई ब्रह्मचारी श्री ब्रज मोहन जी से अवश्य ही परिचित होंगे। श्री प्रभु कृपा का प्रचार और प्रसार, जिज्ञासु प्राणियों को श्री प्रभु दरबार से जोड़ना तथा श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार अपनी नियमित साधना करना ही इनके इस जीवन का उद्देश्य है वह इस महोत्सव में नवरात्र आरम्भ होने के साथ या पूर्व ही श्री सवाई धाम आ गये थे। हमारे एक गुरुभाई श्री अनिल शर्मा जी सम्भवतः सप्तमी को प्रातःकाल ही श्री सवाई धाम पहुँच गये थे। ये भाई जी भी, हमारे आदरणीय भाई श्री ब्रजमोहन जी के रुकने वाले स्थान पर ही निवास करने लगे। उपरोक्त महिला को कार्य करते हुए सभी आगन्तुक कभी न कभी अवश्य ही देख रहे थे। परंतु किसी ने इस बात पर गम्भीरता से विचार नहीं किया। श्री अनिल शर्मा से आदरणीय भाई श्री ब्रजमोहन जी से नौमी के दिन अपराह्न तीन बजे कहा कि भाई जी, यह महिला सदैव आश्रम की सेवा में रहती है। यह किसी से बात भी नहीं करती। लगता है इसका यहीं कोई परिचित भी नहीं है। इस संबंध में आप हमें कुछ बतलाने की कृपा करें। आदरणीय भाई जी ने कहा, "अच्छा! पता करते हैं।" इसी समय वह महिला पंगत का किसी दूसरे का जूठा पत्तल लेकर सड़क की पल्ली तरफ फेकने गई और फेंक कर आ गई एवं फिर स्नानागार की नाली साफ करने लगी। आदरणीय श्री ब्रज मोहन जी ने उस महिला को ध्यान से देखा एवं फिर कहा, "अनिल जी! हमें लगता है कि यह रामरती बुआ जी हैं।" हमारे आदरणीय भाई जी बड़े ही हंसमुख स्वभाव के हैं, उन्होंने अनिल भाई जी से कहा:–

हाथ कंगन को आरसी क्या, पढ़े लिखे को फारसी क्या

अभी पता कर लेते हैं। वे हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री दशरथ जी को साथ लेकर पहुँच

गये, गुरु भवन, जहाँ त्रिलोकी नाथ तकिये पर अपना बांया कर कमल लगाकर आधे लेटे हुये थे। जाकर साष्टांग प्रणाम किया एवं हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, "कहो लल्ला! क्या बात है?" आदरणीय भाई जी ने निवेदन किया, "गुरु जी! एक महिला जब से आई है केवल आश्रम की सफाई ही कर रही है। कभी झाड़ू लगाना, कभी दूसरे के जूठे पत्तल, आश्रम की बाउन्ड्री से बाहर फेंकना एवं कभी स्नानागार की सफाई करना, यही उनका कार्य है। किसी से भी बात करते हमने नहीं देखा। हमें आभास हो रहा है कि वे रामरती बुआ जी हैं।"

उनकी बातों को सुनकर आराध्यदेव जी पलंग पर ही अर्ध पद्मासन पर बैठ गये एवं गम्भीर वाणी में बोले, "रामरती ही क्यों, श्री प्रभु जी के कई सिद्ध योगी बच्चे, इस समय आश्रम की सेवा कर रहे हैं एवं श्री प्रभु जी के स्वर्ण जयन्ती जन्मोत्सव को अपनी आँखों से देखकर उसका आनन्द ले रहे है। हमारे बच्चों को इस उत्सव अवधि में विशेष सतर्क एवं सावधान रहना चाहिए क्योंकि इनका वरदान एवं श्राप तत्काल प्रभावी होगा। तुम जाओ। रामरती जी! जब सेवा से खाली दिखलाई दे तो उन्हें सादर श्री प्रभु जी के भण्डारे का भोजन करवा दो। एक बात का ध्यान रखना, यह बात किसी को बतलाने या ढिंढोरा पिटवाने वाली नहीं है। इस बात को इस समय किसी से भी न कहना ही श्रेयस्कर है।" आदरणीय भाई जी ने जी गुरु जी कहा, उसके बाद साष्टांग प्रणाम किया एवं पुनः अपने उस स्थान पर आ गये, जहाँ से योगिनी रामरती कार्य करते हुए दिखलाई दे रही थी। जब योगिनी रामरती जी सफाई कार्य से निवृत्त होकर, आश्रम में स्थित कुंए की जगत (फर्स) पर आराम करने की नीयत से बैठ गई, उसी समय हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री ब्रजमोहन जी ने उनके सम्मुख उपस्थित होकर प्रणाम करके निवेदन किया "बुआजी! आप हाथ पैर धो लीजिए, मैं आपके लिए भण्डारे का प्रसाद लेकर आ रहा हूँ।" उन्होंने सिर हिलाकर स्वीकृति प्रदान की एवं भाई साहब के सामने गौशाला में चली गई। वहाँ जाकर योगिनी रामरती जी ने गौओं के पीने के लिए इकट्ठा पानी से घुटने से नीचे का पैर, पूरी बांह और अपना मुंह और सिर, आश्रम की मिट्टी लगा-लगा कर धोया उनके द्वारा इतना कार्य करने की समाप्ति तक भाई जी आश्रम का महाप्रसाद लेकर पहुंच गये। योगिनी रामरती जी ने वही गौशाला में टाट पर बैठ कर प्रसाद ग्रहण किया।

प्रसाद ग्रहण कर लेने के बाद, आदरणीय भाई जी ने उनका जूठा पत्तल फेंकने की नीयत से उठाना चाहा, तो बुआ जी ने मधुर मुस्कान के साथ स्पष्ट तौर पर मना कर दिया एवं स्वयं अपना पत्तल बाहर फेंकने गई, आश्रम की परिधि से पार होते ही, सिर झुका कर एक बार श्री सिद्ध गुफा एवं आश्रम को प्रणाम किया एवं फिर वापस नहीं आई। इस प्रकार नौमी का स्वर्ण जयन्ती महामेला अवतारोत्सव का आज अन्तिम दिन था। आराध्यदेव योगिराज श्री बृन्दमोहन जी महाराज, साधकों, जिज्ञासुओं की उपस्थिति के बीच स्वयं भी उपस्थित रहकर नौमी की पूरी रात होने वाले श्री प्रभु प्रेम श्रद्धा वर्धक भजनों को सुनते रहे। दशमी नक्षत्र को प्रातः चार बजे श्री गुरुदेव भगवान ने अखिल ब्रह्मांड नायक, परम योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की विदाई वाली आरती की एवं इस प्रकार परम योग योगेश्वर का स्वर्ण जयन्ती

अवतारोत्सव का बड़ा ही भव्य समापन हुआ।

दशवीं की रात्रि कालीन आरती के बाद श्री गुरुदेव भगवान ने अपने संक्षिप्त उद्‌बोधन में कहा, "श्री प्रभुजी की चरण–शरण प्राप्त कर तुम लोग, उनके अपने हो गये हो। वे कल्याण घन श्री प्रभु जी अपने बालकों पर कृपा करते ही करते हैं। परंतु हमारी एक बात मान लो एवं आज से ही कम से कम एक घंटा से कुछ ज्यादे मंत्र जप अवश्य ही किया करो। यह आश्रम श्री प्रभु जी ने तुम लोगों को ठहरने एवं साधना करने के लिए बनवाया है। अतः यहाँ निवास कर साधना करो एवं अपने निष्काम पुण्य को बढ़ाते जाओ। प्रातः सायं खूब श्रद्धा प्रेम पूर्वक श्री प्रभु जी की आरती करो एवं मंत्र जप करो। अपने सभी सांसारिक कार्य श्री प्रभु जी पर छोड़कर चिन्तामुक्त रहो। बार–बार आशीर्वाद"

श्री मुख का यह उद्‌बोधन, उस समय समझ में नहीं आया। माघ मेला में एक गुरुभाई जी से उसी साल इसको समझाने हेतु निवेदन किया तो उन्होंने उदाहरण द्वारा यह बात समझाई। उदाहरण इस प्रकार रहा। एक यात्री साईकिल से यात्रा कर रहा था। उसके साईकिल का पिछला टायर कई स्थान पर फटने की स्थिति में था। उसे दस किलो चना अपनी रिश्तेदारी में पहुँचाना था। उसने सोचा कि यदि साईकिल पर मैं बैठकर यात्रा करता हूँ एवं दस किलो चना भी कैरियर में बाँधता हूँ तो साईकिल का पिछला टायर अवश्य ही भ्रष्ट (फट) हो जायेगा। अतः उसने एक उपाय सोचा जिससे साईकिल का टायर न फटे। उसने दस किलो चना की गठरी अपने सिर पर रखकर अपनी रिश्तेदारी की यात्रा की। साईकिल से यात्रा कर वह बड़ा प्रसन्न था कि हमने अपनी बुद्धि से टायर बचा लिया वरना अवश्य ही फटा जाता। परंतु सत्यता इससे अलग है। चना यात्री के सिर पर रहे या साईकिल के कैरियर पर, बोझ तो साईकिल के टायर पर ही पड़ेगा। यही हालत हमारे जैसे गुरुभाई–बहनों की है, जो अज्ञानता वश यह सोचते रहते हैं कि अमुक कार्य का बोझ मैं उठा रहा हूँ, जब कि हकीकत इससे अलग है। हम अबोध बच्चों को श्री आराध्यदेव जी गूढ़ रहस्यों को समझने की शक्ति प्रदान करने की कृपा करें, इसी प्रार्थना के साथ, यह प्रसंग समाप्त हुआ।

❀❀❀

आत्म विश्वास अर्थात् स्वयं अपने में विश्वास करना एक कला है जो निरन्तर के अभ्यास से प्राप्त होती है। आत्म विश्वास से परिपूरित व्यक्तित्व स्वयं को दूसरों की दृष्टि में अधिक अच्छे ढग से प्रस्तुत करता है। उठने–बैठने, चाल–ढाल, बोलचाल, मुस्कराने, कार्य–कलाप, चिन्तन–मनन में प्रतिक्षण जागरूक रहने तथा स्वच्छता अपनाने से आत्म विश्वास की उपलब्धि होती है। यही सफल जीवन की कुंजी है।

रूपं–रूपं प्रतिरूपो बभूव

– प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद –

विश्व–ब्रह्माण्ड–लीला का सूत्रधार, परब्रह्म परमेश्वर के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? परब्रह्म परमेश्वर ही सृष्टि के निमित्त और उपादान कारण हैं (ब्रह्मसूत्र 1–2 तथा 2/1/1/11/33)। अतः विश्व–ब्रह्माण्ड परब्रह्म परमेश्वर का ही **'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव'** (कठोपनिषद् 2/2/9) है। ऐसी स्थिति में **'ईशावास्यमिदं सर्वं** (ईश. 1)– के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

सृष्टि के एकमात्र निमित्त और उपादान कारण को **'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव'** के कारण ही लीला के सूत्रधार की संज्ञा दी गई है। साधारण बुद्धि यह समझ नहीं पाती कि विश्व ब्रह्माण्ड उसी एक का प्रतिरूप है। 'भगवल्लीला' शब्द में परब्रह्म परमेश्वर के लीलारत होने का भाव निहित है। लीला का सामान्य अर्थ है क्रीड़ा। इस अर्थ में क्रीड़ा मन बहलाव है। क्या इसी सामान्य अर्थ में भगवल्लीला क्रीड़ा है? स्पष्ट उत्तर है –नहीं। 'भगवल्लीला' शब्द में सृष्टि–प्रक्रिया का गूढ़ार्थ एवं उसका सात्त्विक स्वरूप निहित है। सृष्टि–प्रक्रिया के इस सात्त्विक स्वरूप की अनिर्वचनीयता को 'भगवल्लीला' शब्द से व्यक्त किया जाता है, क्योंकि यह तत्व इतना गूढ़ है कि सामान्य गणित का नियम यहाँ अप्रासंगिक हो जाता है–**'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'**– पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लें तब भी पूर्ण ही शेष रहता है। जीव–विज्ञान इसी अनिर्वचनीय नियम से शासित होते हैं, उस निर्जीव भौतिक विज्ञान के गणित के नियम से नहीं, जिसमें पूरे से पूरा निकाल लेने पर शेष रहता है शून्य।

प्रचलित धारणा है कि भगवल्लीला का सम्बन्ध सगुणसाकार ईश्वर से है, निर्गुण–निराकार ब्रह्म से नहीं। यह न केवल अतिशयोक्तिपूर्ण है, बल्कि सनातन भारतीय परम्परा की मान्यता के भी विपरीत है। हाँ, यह अवश्य है कि सगुण–साकार ईश्वर की लीला का स्वरूप निर्गुण–निराकार ब्रह्म की लीला के स्वरूप से भिन्न होता है। वेद के देवतावाचक सभी शब्द ब्रह्म, विष्णु तथा नारायण के ही वाचक हैं, जो इस धारणा को पुष्ट करते हैं कि सगुण और साकार तथा निर्गुण और निराकार का अन्तर्भाव परस्पर अभेद सम्मत है।

ऋग्वेद का नासदीय सूक्त (10/129/1–7) विश्व साहित्य में लीला–भाव की पूर्ण दार्शनिक अभिव्यक्ति है, जिसमें अव्यक्त के व्यक्त, व्यक्त के अव्यक्त और इन दोनों से परे अनेक अनिर्वचनीय स्वरूपों को अत्यन्त कवित्वपूर्ण रूप में ऋषि ने देखा है। यह सृष्टि के आरम्भ के पूर्व की उस स्थिति की दृष्टि है जब न असद् (अव्यक्त) था, न सद् (व्यक्त), न मृत्यु थी, न अमृत था, न रात्रि थी, न दिन था। उस निर्वात–स्थिति में भी वह एक अकेला स्वतः साँस ले रहा था।

इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र का उत्तरार्ध मनुष्य की उस परम जिज्ञासा को व्यक्त करता है, जो सृष्टि की इस अनिर्वचनीय लीला में अनादि काल से रमती आ रही है। यह उत्कट, उद्दाम, उदात्त और विराट् जिज्ञासा वस्तुतः दर्शनीय है, जो यह प्रश्न उठाती है कि यह सृष्टि जिससे पैदा हुई, जो इसे धारण करता है, परम व्योम में स्थित जो इसका अध्यक्ष है, वह भी इसका रहस्य जानता है अथवा नहीं, इसे कौन जानता है? ('**वेद यदि वा न वेद**') सृष्टि-रहस्य से अभिभूत होकर आइन्स्टीन ने कहा था कि हमारी सर्वाधिक प्रीतिकर अनुभूति रहस्यमय होती है। यही भाव कला और विज्ञान का मूल है।"

लीला में आनन्द का, भगवल्लीला में विराट् के विस्मयकारी रूप-दर्शन के आनन्द का भाव निहित होता है। भगवल्लीला आनन्द का, रास-लीला का, उत्स क्यों है? क्योंकि सृष्टि का आरम्भ ही होता है इच्छा से -'**कामस्तदग्रे समवर्ततााधि.** (ऋग्वेद 10/129/4) अर्थात् प्रजापति के मन में काम-भावना-सृष्टि की इच्छा उत्पन्न हुई। तैत्तिरीय उपनिषद् (2/6)- में कहा गया है- '**सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति**'। अर्थात् उस (परमात्मा)-ने कामना की कि मैं बहुत हो जाऊँ। यह विस्तार कैसे सम्भव हुआ? '**स तपोऽतप्यत**' अर्थात उसने तप करके यह सारा जगत उत्पन्न किया। ऐतरेयोपनिषद् (1/1) में एक के मन में बहुत होने की कामना उत्पन्न होने की बात कही गई है। पर साथ ही दो और बातें भी हैं। उसने एक से बहुत होने की इच्छा क्यों की? क्योंकि वह एक अकेला था-'**आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्**'। दूसरा यह कि वहाँ '**अकामयत**' के स्थान पर '**ईक्षत**' शब्द का प्रयोग किया गया है। आत्मा ने कामना की, विचार किया। स्पष्ट है, एक में दूसरा भाव भी समाविष्ट है।

आत्मा की इस सृजन-प्रक्रिया के सम्बन्ध में मुण्डकोपनिषद् (1/1/7) में कहा गया है-

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि
तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्।।

अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी जाले को बनाती है और फिर निगल जाती है, जिस प्रकार पृथ्वी में नाना प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं और जिस प्रकार जीवित पुरुष से केश और रोयें निकलते हैं, उसी प्रकार अक्षर-ब्रह्म से यह विश्व उत्पन्न होता है।

लीला-प्रसंग में ब्रह्म के मूर्त एवं अमूर्त-रूप को लेकर शंका की जाती है। इस सम्बन्ध में बृहदारण्यकोपनिषद् (2/3/1) में कहा गया है-

'**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यच्च।**'

अर्थात् ब्रह्म के दो रूप हैं- ' मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमृत, स्थित और यत् (चर) तथा सत् और त्यत्।' शंकराचार्य ने अपने भाष्य में अन्य (मर्त्य-अमृत आदि) को मूर्त और अमूर्त का विशेषण कहा है।

तप के बिना सृष्टि सम्भव नहीं है। इसीलिये कहा गया है 'स तपोऽतप्यत' (तैत्तिरीय. 2/6) ब्रह्म ने केवल कामना ही नहीं की, उस कामना की सिद्धि के लिये तप किया। तप क्या है? तैत्तिरीय उपनिषद् (2/6) के अनुसार 'ज्ञानमयं तपः'– तप ज्ञान–रूप है। इसीलिये आचार्य ने कहा है– 'तप इति ज्ञानमुच्यते।' अर्थात् 'तप' शब्द से यहाँ 'ज्ञान' कहा जाता है। इस ज्ञान का विस्मरण हो जाने पर लीला–भाव मोह–जाल हो जाता है।

मुण्डकोपनिषद् (1/2/8) सृष्टि के क्रम को इस रूप में स्पष्ट करता है–

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्।।

अर्थात् ब्रह्म तप से वृद्धि को प्राप्त होता है, उससे अन्न उत्पन्न होता है, अन्न से प्राण, मन, सत्य, समस्त लोक और कर्मों से अमृत उत्पन्न होता है।

यह अव्यक्त होने, उसके इन्द्रियातीत से इन्द्रियगम्य होने और लीला की भाषा में कहें तो उसके अवतरण की प्रक्रिया की दार्शनिक–वैज्ञानिक स्थिति का निरूपण है–इस निर्गुण–निराकार के सगुण–साकार अवतरण–प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है।

निर्गुण–निराकार ब्रह्म का जब सगुण–साकार–रूप में अवतरण होता है तो उस नर–चरित को देखकर बुद्धि भ्रम में पड़ जाती है–

'बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई।।'

बिकल नर–रूप में राम को देखकर सती के मन में भ्रम पैदा हुआ–

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज बज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद।।

पर शिव को कोई भ्रम नहीं हुआ–

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन।।

राम ब्रह्म हैं, माँ कौसल्या को यह जन्म के समय ही प्रतीत हो जाता है–

करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता।।

तुलसी दास की इन पंक्तियों में अवतार–तत्व, भक्ति–तत्व, लीला–तत्व और वात्सल्य–भाव सबका समावेश है। राम कौसल्या–सुत तो हैं, पर हैं परब्रह्म परमेश्वर ही। कृष्ण की बाल–लीला का वर्णन करने वाली सूरदास की इन पंक्तियों में इसी भाव को चित्रांकित किया गया है–

घुटुरुनि चलत रेनु–तन–मंडित, मुख दधि लेप किए।।

स्पष्ट है, अवतार–भाव के आधार के बिना भगवल्लीला–भाव सम्भव नहीं है। इसीलिये तुलसीदास जी बार–बार स्मरण दिलाते हैं–

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद।।
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।।

रामावतार के बारे में तुलसीदास जी ने जो कुछ यहाँ कहा है, कृष्णावतार या अन्य अवतारों के बारे में भी इसी भाव से अन्यत्र भी ऐसी ही बातें कही गई हैं।

'भागवत–धर्म–सार' के मराठी संस्करण की प्रस्तावना में भगवत्–लीला–कथा के सम्बन्ध में भक्तिप्रवणता एवं लीलातत्त्व से ओतप्रोत ग्रन्थ श्री मद्भागवत के विषय में संत विनोबा ने लिखा है – भागवत ने जिसके मन को पकड़ न लिया हो, जिसके चित्त को रिझाया न हो, रमाया न हो और शान्त न किया हो, ऐसा कौन भक्त इस जाग्रत् भारत में हुआ होगा?

भक्त के लिये सर्वस्व मुक्ति नहीं भक्ति है। नारदभक्तिसूत्र में भक्ति को 'परमप्रेमरूपा' एवं 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है। कैसी होती है ऐसी भक्ति? नारद कहते हैं–'यथा व्रज–गोपिकानाम्'। गोपिकाओं की कृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये– न मुक्ति, न युक्ति और न ज्ञान। कृष्ण की भक्ति में वे ऐसी रमीं कि स्वयं 'परमप्रेमरूपा' हो गईं।

नवधा भक्ति वस्तुतः भगवल्लीला का विभिन्न रूपों में श्रवण–कीर्तन है। नाम–रूप का भेद भक्त की सीमा के कारण है। घट–घट में वास करने वाले भगवान् भक्त के बाह्याचार को नहीं, उसके अन्तर्मन के समर्पण–भाव के भूखे होते हैं। विश्व–ब्रह्माण्ड–लीला के सूत्रधार के सामने आत्म–वञ्चना के लिये कोई स्थान नहीं होता, जैसे प्रकाश के सामने अन्धकार का।

भक्त अपने इष्ट की भक्ति ईश्वर के रूप में करता है, वह इष्ट ही उसकी दृष्टि में सर्वस्व–सर्वोपरि है, लीला का सूत्रधार है। इसका मूलाधार यह वैदिक दृष्टि है– 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' (ऋग्वेद १/164/46)। उसके नाम का कोई अन्त है क्या? विष्णुसहस्त्रनाम की सीमा के भी वह परे है, लक्ष या कोटि के भी परे। वह तो अनन्त है।

भक्ति में भेद के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। राम ने बाली का वध किया है, इस कारण जब रावण ने अंगद के मन में भेद पैदा करना चाहा तो अंगद ने उत्तर दिया–

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहि जाकें।।

भक्त के लिए तो सारी सृष्टि प्रभुमय हो जाती है।

सारांश यह है कि भारतीय जीवन–दृष्टि भगवल्लीला–दृष्टि है। वेद से लेकर आजतक यह जीवन–दृष्टि निर्बाध विविध रूपों में विकसित होती चली आ रही है। अद्वैत भक्ति–भाव के बिना इस लीला–तत्त्व को हृदयंगम नहीं किया जा सकता। इसके अभाव के कारण ही कभी भक्ति के लिये द्वैताद्वैत का सहारा लिया गया है, कभी द्वैत का, कभी किसी और का। वस्तुतः भगवल्लीला विश्व–ब्रह्माण्ड–लीला का ही भाव–रूप है, परमप्रेम–रूप होने के कारण ही यह अमृतस्वरूपा भी है, अतः आनन्दरूपा और अखण्ड ज्योतिरूपा भी है।

इसका सूत्रधार सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है, हम सबके हृदय में समाया हुआ है। जब हमारा चित्त निर्मल होगा, तभी वह हमें दिखाई देगा, फिर इसकी यह लीला भी हमें रसमय प्रतीत होगी।

विषाद योग

–पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय (गोरखपुर) –

कालचक्र, युगचक्र के प्रणेता योग योगेश्वर भगवान के मुखारविन्द से निकली गीता की वाणी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी पूर्व की तरह समसामयिक है। उनके उपदेश गीता में अर्जुन के लिए थे। किंतु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह सबके लिए कल्याणकारी है। भगवत गीता उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र विषयक ग्रंथ है। तात्पर्य यह है कि यह उपनिषद एवं योग के बीज तत्वों को लिए हुए ब्रह्म विषयक ज्ञान कराने वाला है। इसके उपदेश मनुष्य जीवन के हर पहलू का स्पष्ट निर्देश है। मानव जीवन में सुख और दुःख कालक्रम के अनुसार आते रहते है। व्यक्ति दृश्य जगत में भोक्ता के रूप में अपने कर्म को भोगता है। महाभारत का युद्ध भी इसी का परिणाम है। युद्ध न हो इसके लिए सारे प्रयास भी विफल हो गये। युद्ध भी ईश्वर की ही लीला का परिणाम रहा होगा। अंततः युद्ध के मैदान में अर्जुन को भगवान कृष्ण के साथ उतरना पड़ा। युद्ध के भावी परिणाम को भी भगवान ने अर्जुन को बताया कि–

"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्"

युद्ध की सफलता का यह भी परिणाम हो सकता है कि पृथ्वी पर आसुरी शक्तियों की प्रबलता। इससे शायद ईश्वर को भी अपना कार्य करने की विवशता हो जाती है इसीलिए इन आसुरी शक्तियों का विनाश करने के लिए ईश्वर को अवतार लेना पड़ता है–

परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे–युगे।।

आशय यह कि धर्म की स्थापना के लिए भगवान को प्रत्येक युग में अवतार लेना पड़ता है।

गीता का प्रथम अध्याय विषाद योग इसी अवतार का एक प्रयोजन हो सकता है। कुरुक्षेत्र धर्म क्षेत्र है। महाभारत का युद्ध भी धर्म क्षेत्र में हो रहा है। निश्चय ही जीत धर्म की होगी। फिर भी अर्जुन को युद्ध में विषाद हो गया। विषाद प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सर्वप्रथम आ ही जाता है। यह विषाद अपने में व्यापक संकेत लिए हुए है। खासतौर से मानव जीवन में यह होता ही है।

शास्त्रों में मनुष्य की तीन कोटि बतायी गयी है। प्रथम प्रकार के व्यक्ति विषाद के कारण कोई कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते हैं। दूसरे वे होते है जो विषाद (बाधा) के उत्पन्न होने पर कार्य बन्द कर देते हैं। तीसरे वे पुरुष है जो विषाद के बार–बार आने पर भी कार्य को समाप्त करके ही बन्द करते हैं। तीसरे कोटि के पुरुष ही श्रेष्ठ माने गये है। अर्जुन तीसरी कोटि की श्रेणी का है, लेकिन विषाद को तोड़ते हुए लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तैयार हो गया। प्रत्येक व्यक्ति को इसी

प्रकार का होना चाहिए।

विषाद होने पर मन की स्थिति पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं होती हैं। जैसा कि अर्जुन के साथ हो रहा है। वह योगेश्वर कृष्ण से कहता है –

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मेरोमहर्षश्च जायते ।। ।।। 28
गाण्डीवं स्रंसते हस्ताच्चक्वैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।। ।।। 29

अर्जुन कहता है – हे केशव मेरे अंग शिथिल हो रहे है, मुख भी सूख रहा है, शरीर में कम्प तथा रोमांच हो रहा है। हाथ से गाण्डीव गिर रहा है। त्वचा भी जल रही है। मेरा मन भ्रमित सा हो रहा है। इसलिए मैं खड़ा रहने में समर्थ नहीं हूँ।

ये समस्त स्थितियां सामान्य जीव के साथ भी होती हैं। साधक के साधन में भी ऐसी परिस्थितियाँ आती है। साधक के साधन से च्युत होने का कारण अवसाद है। यह अवसाद मन की चंचल वृत्तियों के कारण होती है। चंचल वृत्तियाँ ही मन में एक खास तरह का क्षोभ उत्पन्न करती है। योग में इन्हीं चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण की बात कही गई है। इन चंचल वृत्तियों पर नियंत्रण करने के उपायों में अभ्यास और वैराग्य की बात कही गई है। "अभ्यास–वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।" इस अभ्यास और वैराग्य को भी कब तक कैसे करें? इसका उपाय बताते हुए कहा गया– **"स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढ़भूमि'** अर्थात् अभ्यास को दीर्घ काल तक और निरन्तर तथा श्रद्धापूर्वक करने से दृढ़ भूमि होगी।

आज वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसका अभाव देखा जा रहा है। सूत्र के तीन बिन्दु दीर्घकाल अर्थात किसी भी कार्य के बारे में हम जल्दी फल की आकांक्षा करने लगते है। जबकि ऐसा कदापि सम्भव नहीं है। किसी भी कीमत पर हमें शीघ्र लाभ की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि विद्यार्थी कक्षा की पढ़ाई करते हुए एक मानक योग्यता के अनुसार ही फल की प्राप्ति कर पाता है। एक उद्यमी या कृषक दीर्घकाल के बाद ही परिणाम को प्राप्त करता है। इसलिए इस विषय में विषाद कार्य से प्रतिमुख करता है तथा विलम्ब के कारण मन की वृत्तियाँ अशान्त होने लगती है। लेकिन हमारे शीघ्रता या छटपटाने से कुछ नहीं होगा। दूसरा बिन्दु निरन्तरता है। साधक या सामान्य जीव को अपने किसी भी कार्य को बन्द नहीं करना है। निरन्तर करते जाना है। तब उसका उत्तम फल प्राप्त होगा। जैसे विद्यार्थी अपने मानक योग्यता को तब प्राप्त करेगा, जब वह प्रत्येक कक्षा को पास करते हुए आगे बढ़ेगा। यदि कहीं भी विषाद (बाधा) आयी तो मानक योग्यता को नहीं प्राप्त कर पायेगा। यही बात सामान्य जीवन में भी है। सद्गुरुदेव भगवान इसीलिए बार–बार नित्य समय से ध्यान व जप का उपदेश करते थे। क्योंकि– **"करत करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान"** की कहावत कही गई है। तीसरा बिन्दु श्रद्धापूर्वक (सत्कार द्वारा)। किसी भी कार्य को करने के लिए श्रद्धा तथा आत्म विश्वास की भी आवश्यकता होती है। क्योंकि इसके

बिना कार्य का होना भी असम्भव हो जायेगा। यह श्रद्धा अपने कार्य के प्रति अवश्य होनी चाहिए। इसके अभाव में विषयवस्तु के प्रति रूचि नहीं उत्पन्न होगी। बिना रूचि के साधक अपेक्षित सफलता को नहीं प्राप्त कर सकता है। श्रद्धा साधक विद्यार्थी का माता के समान रक्षा करती है। कार्य के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करती है। जिससे साधक नये–नये विचारों एवं अर्थ का बोध करता है। साधक साथियों! हम सबको गुरुदेव भगवान सदैव उद्‌बोधित करते समय इन सबका सम्यक् उपदेश दिया करते थे।

अर्जुन विषम विषाद की स्थिति में युद्ध के मैदान में खड़ा था। वह भी योगेश्वर परमात्मा के सम्मुख जहाँ शायद संशय की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। मेरे समझ से सद्‌गुरुदेव भगवान के द्वारा सुनी गई वाणी जो हम साधकों के लिए स्वयं कृष्ण स्वरूप में प्रबोधित करते थे। साधक में किसी प्रकार की संशय की विषाद रूपी गांठ नहीं रहने देना चाहते थे। वही काम योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण अर्जुन के माध्यम से समस्त जीव को उद्‌बोधित किया हो। अर्जुन योग्य जिज्ञासु वृत्ति वाला था। विषाद भी जिज्ञासा के रूप में जान पड़ता है। भगवान की अमोघ वाणी से उसकी सारी वृत्तियाँ धीरे–धीरे शान्त हो जाती है। वह कह उठता है:–

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्य सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।।1।।32

इसका परिणाम क्या होगा ? पुन: कहा:–

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्य सुख लोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यता:।।

अर्जुन कहता है कि हम लोग बुद्धिमान होकर भी महान पाप करने जा रहे हैं। राज्य और सुख के लोभ हेतु अपने कुल को मारने के लिए तैयार है। अर्जुन का यह प्रश्न भी समस्त साधक समुदाय के लिए चेतावनी स्वरूप ही है। हम लोग अपने ही स्वार्थ की पूर्ति के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते है। यह भी महान पाप है। क्योंकि साधक को लोभ की वृत्ति से कार्य करने का परिणाम भी असफलता ही है। इसलिए कार्य के भावी परिणाम के बारे में सोचने से विषाद की वृत्ति बनेगी। साधक साथियों इससे स्पष्ट हो गया कि किसी भी कार्य को प्रभु का कार्य मानकर करना ही श्रेयस्कर होगा। इससे ही साधक योग के सोपान को प्राप्त करता चला जायेगा।

□□□

जैसा बीज हम बोयेंगे वैसी ही फसल उगेगी। जैसी तैयारी करेंगे वैसा ही परिणाम सामने आयेगा। उत्कृष्ट–आत्म चिन्तन हमारे अन्त:करण को सद्‌कर्मों की ओर प्रेरित करता है। प्रारम्भ में हम थोड़ा विचलित हो सकते है; परन्तु बार–बार के दृढ़ अभ्यास व संकल्प से हमारा स्वभाव उत्कृष्ट चिन्तन का बन जायेगा, जिससे प्रतिपल आत्म निरीक्षण होता रहेगा।

श्री राम लाल प्रभवे नमः

जगदीश राए बंसल ''अधम''

प्रभू राम लाल ने ऐसा, जीवन दान दिया।
तपेदिक मानक से, अपने तन पै लिया।।
सोलन में उपचार कराया, दोऊ फेफड़ा खराब बताया।
डाक्टर ने घर भिजवाया, है सिर पर मौत का छाया।।
नहीं दवा काम किया। तपेदिक मानक.....
बहन ज्ञान देवी घबराई, सांवरिया से अर्ज लगाई।
सपने में आए कृष्ण मुरारी, प्रभु जी की छवि दिखाई।।
बोले ऋषिकेश लिया। तपेदिक.....
ज्ञान देवी ऋषिकेश ले आई, गुरु द्वार पर उसे लिटाई।
कैलाश को प्रभू जी पठाई, पूछो मानक चन्द क्या खाई?
बोला तेल पकौड़े खिला। तपेदिक.....
आज्ञा दे प्रभू जी मुस्काए, ज्ञान देवी ने पकौड़े खिलाए।
मानक चन्द ने होश गवाए, पत्नी ने रूदन मचाए।।
भाग्य मेरा फूट गया। तपेदिक.....
प्रभू जी ने सन्देशा भिजवाया, पत्नी को बहुत समझाया।
तेरे पति का रोग है कटवाया, तू समझ ले प्रभू की माया।।
मानक आंखें खोल दिया। तपेदिक.....
पत्नी को मानक ने फरमाया, क्यों तू नें रूदन मचाया।
था प्रभू जी अभी यहाँ आया, यह कैसी लीला रचाया।।
मेरी काया कल्प किया। तपेदिक.....
मुख से काला गोला निकला, प्रभू जी के मुख में उड़लगा।
मुझे कंचन काया मिलगा, प्रभू जी को बिमारी लगगा।।
मुझे जीवन दान दिया। तपेदिक.....
प्रभू जी की महिमा न्यारी, लहँ गुरु चन्द्रमोहन सारी।
कैसे कट गई यह बिमारी, डाक्टर को अचरज भारी।।
''अधम'' चमत्कार हुआ। तपेदिक.....

श्री सिद्धयोग साधक मण्डल दतिया का
योग शिविर सम्पन्न

योग योगेश्वर महाप्रभु श्रीरामलाल जी महाराज एवं प्रात: स्मरणीय योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की करुणा कृपा से चार दिवसीय योग साधना शिविर का आयोजन सिद्धयोग साधक मण्डल दतिया के द्वारा किया गया। वर्ष 1989 में योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का योग साधना कार्यक्रम हुआ था, उसके बाद आज 18 वर्ष के लम्बे अन्तराल पश्चात् यह योग साधना शिविर परम श्रद्धेय डा. दासलाल जी योगाचार्य के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। इतने लम्बे अन्तराल के पश्चात् महाप्रभु जी ने योग साधना शिविर के लिए गुरु भक्तों में प्रेरणा उत्पन्न की तथा सभी गुरु भक्तों ने मिलजुल कर सभी प्रकार से सहयोग प्रदान किया जिसका सैकड़ों लोगों ने आनन्द प्राप्त किया। योग साधना शिविर का आयोजन दिनांक 26 जनवरी 2008 से 29 जनवरी 2008 तक किया गया।

चार दिवसीय योग साधना शिविर निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रात: 8 बजे से 10 बजे तक चला जिसमें ध्यान योग, जीवन तत्व क्रियायें, योगासन, चिकित्सा परामर्श, आरती, गीतापाठ तथा सार प्रवचन हुये। सायंकालीन 5 बजे से रात्रि 9. 30 बजे तक योग, भजनों, संकीर्तन, आरती एवं योग सिद्धान्तों पर व्याख्यान श्री आचार्य जी द्वारा दिये गये।

आचार्य श्री दासलाल जी द्वारा सिद्धयोग की सरलतम शब्दों में सहज व्याख्या की गयी जिसे सैकड़ों लोगों को सुनने का सुअवसर मिला। आचार्य दासलाल जी ने अपने व्याख्यान में "युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्ट कर्मसु, युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुख्या" अर्थात् जो ठीक समय पर खाते हैं, ठीक समय पर सो जाते हैं, ठीक समय उठ जाते हैं, न ज्यादा खाते हैं, न ज्यादा बोलते हैं वे ही योग साधना कर पाते हैं। गुरुमन्त्र का कम से कम 2 घन्टे जाप करना व एक घन्टे ध्यान करने पर श्री आचार्य जी ने विशेष बल दिया इससे धीरे–धीरे दैवी सम्पदा बढ़ती चली जाती है। जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का एक मात्र मार्ग योग साधना ही है। कोई मनुष्य चाहे जितना ज्ञानी, विरक्त, धर्मिष्ठ और जितेन्द्रिय क्यों न हो पर वह बिना योग के मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता। श्री आचार्य जी ने अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध, परिग्रहम् पर अपने व्याख्यान में बड़े ही सुन्दर एवं सहज भाव से समझाया 'यस्मित ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञात भवति सैषा योग विद्या' अर्थात जिसके जान लेने पर सभी कुछ जान लिया जाता है वह योग विद्या है। योग से ही मनुष्य धनी बनता है। देशबन्धाचित्तस्य धारणा – किसी एक लक्ष्य स्थल पर मन को एकाग्र करने का नाम धारणा है। धारणा के बाद किसी एक को अपना इष्ट मानकर ध्यान करना निश्चित ही फलीभूत होगा। श्री आचार्य जी ने महर्षि पातंजलिजी के अष्टांग योग पर विस्तृत व्याख्यान दिये। चलते–फिरते उठते–बैठते अपने गुरु मन्त्र का जाप करने उनके मन में शुद्ध संकल्प बना लेने, अपनी बुद्धि और मन को उनमें विलय कर लेने से सिद्धों के महासिद्ध योग योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज की अवश्य ही कृपा बरसेगी। आचार्य जी ने कहा कि सिद्धों की कृपा से ही मनुष्य अपने जीवन को योगमय बनाकर अपना कल्याण कर सकता है।

प्रात: गीता पाठ जिसमें नित्य एक अध्याय का वाचन तथा सार प्रवचन आचार्य जी द्वारा बहुत ही सरल रूप में समझाया गया सभी योग जिज्ञासुओं ने बड़े ही हृदय भाव से श्रवण किया। इस आयोजन का मुख्य उद्देश्य योग विद्या का अमर संदेश जन-जन तक पहुँचाना है। योग सार्वभौम विद्या है जो व्यक्ति सदाचार का जीवन जीते हैं वे सभी इस अमर विद्या को करने के अधिकारी है। योग में मनुष्य की दो वृत्तियों पर आचार्य जी ने प्रकाश डाला- क्लेश वृत्ति, अक्लेशवृत्ति। क्लेशवृत्ति के व्यक्ति तामसी प्रवृत्ति के होते हैं, जिनके ऊपर गुरु कृपा नहीं होती अक्लेश वृत्ति के व्यक्ति सात्विक प्रवृत्ति के होते हैं जिनके ऊपर गुरुदेव की असीम कृपा बरसती है। अपने व्याख्यान में कई दृष्टांतो के उदाहरण देकर बड़े सरल भाव से आचार्य जी ने योग मार्ग पर चलने के लिये प्रकाश डाला।

कार्यक्रम में गुरुभाईयों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की जिसमें गंगापुर सिटी, भोपाल, मुरैना, ग्वालियर एवं मण्डलेश्वर से वरिष्ठ गुरु भाई श्री आशाराम गोस्वामी आदि पधारे।

संगीत में गुरुदेव के योग भजनों एवं संकीर्तन ने सारे वातावरण को आनन्द से सराबोर कर दिया। जिन गुरु भक्तों एवं बच्चों ने योग भजनों को सुनाकर आनंदित किया उनमें सर्व श्री सीताराम भट्ट, विजय शंकर, विनोद रोहित, राजू गोलवलकर, सुनील दुबे, अशोक तिवारी, सोमेश्वर, रजनी, रिचा, प्रफुल्ल, प्रसन्न, अंकित, आकाश, विकास, शिखा, अनुराधा, आदित्य एवं पुष्कर ने बहुत ही सुन्दर भजनों की प्रस्तुति दी तथा प्रभुजी की आरती सस्वर व अलौकिक लय बद्धता के साथ होती थी। गंगापुर से आये गुरु भाई रामेश्वर जी एवं साथियों ने प्रात: बड़े ही सुन्दर भजनों को सुनाया। हमारे संगीत के कलाकारों ने पूर्ण मनोयोग के साथ गुरुदेव के भजनों एवं संकीर्तन की प्रस्तुति दी।

आचार्य डा. दासलाल जी उस स्थान पर भी गये जहाँ योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ब्रह्मचारी आश्रम जाया करते थे। गुरु भक्त चन्दन सिंह, विपिन बिहारी भारती, धर्मज्ञ सिंह एवं अरूण भारती ने अपने-अपने निवास स्थान पर आचार्य जी को आमंत्रित किया जहाँ आचार्य जी के सानिध्य में भजन एवं सत्संग हुआ।

यह प्रभु जी की अनुपम कृपा का ही फल है कि इस योग शिविर में बड़ी संख्या में लोग प्रभुजी के दरबार से जुड़े हैं। यह सत्य है कि प्रभुजी अपने संस्कारी बच्चों को अपनी ओर स्वयं खींच लेते हैं। दिनांक 29 जनवरी 2008 को प्रभुजी का भण्डारा हुआ तथा सभी गुरु भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया। डा. जगदीश शरण जी ने योग साधना शिविर के समापन परा कविता पाठ किया एवं सभी गुरु भक्तों को कार्यक्रम में सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापित किया तथा दतिया योग साधक मण्डल ने भविष्य में योग को जन-जन तक पहुँचाने के लिए गुरु भाईयों से सक्रिय सहयोग की कामना की है।

प्रेषक

अनिल दुबे

मुड़ियन का कुआ जि. दतिया

श्रीमद् भागवत–महात्म्य

– राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू) –

नैमिषारण्य में व्यास गद्दी पर बैठे सूत जी को प्रणाम करके, शौनक जी ने उनसे निवेदन किया–

सूतजी! भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से प्राप्त होने वाले विवेक की वृद्धि किस प्रकार होती है? कलिकाल में रज–तम की वृद्धि के कारण जीव आसुरी प्रकृति में पड़ जाते हैं और विविध क्लेशों को प्राप्त करते हैं। विवेक द्वारा किस प्रकार मोहमाया से बचा जा सकता है? आप क्लेशों से बचने का उपाय बताने की कृपा करें ताकि श्रीकृष्ण आसानी से प्राप्त हो जायें। अध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक ये तीन प्रकार के ताप सच्चिदानन्द, भगवान श्री कृष्ण को प्रणाम करने से ही नष्ट हो जाते हैं। किंतु योगेश्वर श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लेना कोई आसान बात नहीं है। योगियों को भी दुर्लभ भगवान गुरुकृपा से आसानी से सुलभ हो जाते हैं।

सूतजी बोले–

हे शौनक जी आपके चित्त में भक्ति और श्रद्धा है इसलिए मैं आपको सब सिद्धान्तों का तत्व बतलाता हूँ। कलयुग में श्री शुकदेव जी ने श्रीमद्भागवत शास्त्र कहा है यही वह तत्व है जो सर्वभय भंजक, भगवद् भक्ति को बढ़ाने वाला और श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने वाला है। अनेक जन्मों का पुण्य उदय होने पर ईश्वर की महान कृपा के फलस्वरूप ही श्रीमद्भागवत सुनने अथवा पढ़ने का शुभ अवसर प्राप्त होता है। देवता इस अवसर को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त लालायित रहते हैं। स्वर्ग में अत्यन्त सुख भोग के कारण देवताओं में श्रद्धा भक्ति का अभाव रहता है। यही कारण है कि श्रीमद्भागवत की कथा देवताओं के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। देवताओं में स्वार्थपरता का दुर्गुण किसी से छिपा नहीं है अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए वे सिद्ध–महापुरुषों को भी प्रलोभन दिये बिना नहीं रहते। जिस समय शुकदेव जी राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत की कथा सुना रहे थे उस समय देवता लोग अमृत का कलश लेकर वहाँ पहुँचे। उन्हें वहां देखकर शुकदेव जी कहने लगे– हे देवताओं! यहाँ आने का अपना अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

देवताओं ने कहा–अभिप्राय स्पष्ट है मुनिवर! आप हमारा अमृत ले लीजिए और बदले में हमें कथा रूप अमृत दे दीजिए। स्वर्गलोक का अमृत पीकर राजा परीक्षित तो अमर हो ही जायेंगे हम देवता लोग भी आपसे श्रीमद्भागवत का कथामृत पीकर कृतार्थ हो जायेंगे।

शुकदेव जी देवताओं की कपट चातुरी को समझ कर मुस्कराने लगे। मन में विचार करने लगे कि कहाँ भागवत की कथा कहाँ अमृत, कहाँ काँच और कहाँ बहुमूल्य मणि! उन्होंने मुस्कराते हुए कहा–

स्वार्थ साधन में कुशल देवताओं! तुम लोगों में श्रीमद्भागवत के प्रति राजा परीक्षित के

जैसी श्रद्धा–भक्ति नहीं है अत: मैं तुमको यह कथा रूप अमृत प्रदान नहीं कर सकता। सभी देवता अपना–सा मुँह लेकर स्वर्गलोक वापस लौट गये। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि श्रीमद्भागवत को श्रवण करना कितना दुर्लभ है। जिन्हें यह प्राप्त हो जाती है वे धन्यभागी है।

राजा परीक्षित की मुक्ति को देख कर ब्रह्माजी बड़े आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने भागवत के उत्कृष्ट प्रभाव को देखने के लिए सत्यलोक में तराजू के एक पलड़े में सम्पूर्ण तप, दान, व्रत आदि साधनों को रखा और दूसरे पलड़े में श्रीमद्भागवत को। ब्रह्माजी व अन्य ऋषियों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने देखा कि उक्त सभी साधन हल्के निकले जबकि श्रीमद्भागवत भारी निकली। सत्यलोक में अनुभूत की गई इस घटना के पश्चात् ब्रह्माजी सहित सभी ऋषियों ने यह समझ लिया कि कलयुग में श्रीमद्भगवत शास्त्र भगवान का ही रूप है। इसके पढ़ने सुनने से तुरत बैकुण्ठ मिलता है। इसका सप्ताह सुनने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। ब्रह्माजी से पहले नारदजी भागवत सुन चुके थे। किंतु ब्रह्माजी के पुत्र सनक आदि ऋषियों ने उनको भागवत सात दिनों में पारायण सुनने की विधि बतलाते हुए सुनायी थी।

शौनक जी ने पूछा–

सूतजी लोगों में लड़ाई–झगड़ा कराने वाले नारदजी कभी एक जगह स्थिर नहीं रहते तब उन्होंने विधिपूर्वक सप्ताह पारायण कथा कैसे सुनी?

सूतजी ने कहा–

हे तपोधन! तुम्हारे इस प्रश्न के उत्तर में मैं तुमको भक्तिपोषक गुप्त इतिहास सुनाता हूँ जिसे शुकदेव जी ने मुझे अपना प्रिय और अनन्य भक्त समझ कर सुनाया था।

एक बार सनक आदि महर्षियों ने नारदजी को बदरी क्षेत्र में बहुत उदास स्थिति में देखा। पूछने लगे– ब्राह्मन् आप उदास क्यों है? आप तो विरक्त है भला आपको कैसी चिंता? नारद जी बोले–

हे महात्माओ! मैं नरलोक में इसलिए आया था कि यह कर्मभूमि होने से सभी लोकों में श्रेष्ठ है किंतु यहाँ पापकर्मों में लिप्त लोगों को देखकर अत्यन्त हैरान हूँ। अब देखो न, कलयुग ने पृथ्वी मण्डल को अति दूषित कर डाला है। यहाँ पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग और सेतुबन्ध आदि तीर्थों में मैंने भ्रमण किया। ये शान्ति प्रदान करने वाले स्थान कहे जाते है किंतु मुझे यहाँ किसी भी स्थान पर शान्ति प्राप्त नहीं हुई। मैं अपनी किसी व्यक्तिगत समस्या को लेकर चिन्तित नहीं हूँ। मुझे चिन्ता इस बात की है कि मानव जाति की सात्विकता–आध्यात्मिकता कलियुग के दुष्प्रभाव से दिन प्रतिदिन नष्ट–भ्रष्ट होती जा रही है। तब मानव का कल्याण कैसे सम्भव होगा? यही मेरा कष्ट है यही मेरी उदासी का कारण है। कलयुग ने सत्यता, पवित्रता, दया, दान, तप आदि साधनों को नष्ट कर दिया है। सभी लोग ओछे स्वभाव के अपना पेट भरने वाले, झूठे, मन्दबुद्धि, भाग्यहीन और व्यसनों में फंसने वाले हो गये। घरों में पत्नियों की प्रभुता है, सालों की सलाह है। पति–पत्नी में अन्तहीन झगड़े है। कैसे मानव का आध्यात्मिक उत्थान सम्भव हो? यही मेरा दुख है। इसी चिन्ता में डूबा मैं वृन्दावन में

यमुना तट पर पहुँचा। वहाँ मैंने एक स्त्री को उदास बैठे देखा। उसके पास दो बूढ़े अचेत पड़े सांस ले रहे थे। कुछ स्त्रियां घेरे हुए पंखा डुला रही थी। युवती रो रही थी बार-बार बूढ़ों को सचेत करने की कोशिश करती थी। युवती सहायता के लिए बार-बार चारों ओर देखती थी। नारद जी को वहाँ देखकर कातर स्वर में कहने लगी-

-महात्मन! आप जैसे सज्जनों के दर्शन करके सारे पाप दूर हो जाते है। मुझे पूर्ण विश्वास और भरोसा कि आपके अनुग्रहपूर्ण वचनों से मेरा समस्त संकट कट जायेगा।

-सुन्दरी! तुम कौन हो? ये स्त्रियाँ कौन हैं और तुम्हारे पास पड़े ये दोनों बूढ़े कौन है?

-महात्मन! मैं भक्ति हूँ और ये दोनों बूढ़े मेरे ही पुत्र ज्ञान और वैराग्य हैं। ये स्त्रियां गंगा आदि नदियां हैं जो मेरी सेवा के लिए यहां उपस्थित हुई हैं।

-भद्रे! आप अपने दुःख का कारण बतलाइये आप के रोने का क्या कारण है?

-महात्मन! कलिकाल के प्रभाव से मेरे दोनों पुत्र जीर्ण-शीर्ण दिखलाई पड़ते हैं। हे तपोधन! मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई हूँ, कर्नाटक मेरा पालन पोषण हुआ। महाराष्ट्र में भी मेरा कहीं-कहीं पालन हुआ है किंतु गुर्जर देश में पहुँच कर मैं जीर्ण हो गई। वहाँ पाखण्डियों ने अंग-भंग कर डाला। मैं तभी से अपने पुत्रों सहित दुर्बल होती जा रही हूँ। परेशान होकर मैं वहां से वृन्दावन चली आई। यहाँ मैं सुन्दरी युवती हो गई किंतु मेरे पुत्र अभी जीर्ण-शीर्ण हैं। इसी दुःख से व्याकुल होकर मैं रो रही हूँ। मैं जवान कैसे हो गई और मेरे पुत्र ज्ञान-वैराग्य बूढ़े क्यों हो गये?

ऐसा कहते-कहते भक्ति के नेत्रों में अश्रु छलछला आये। नारदजी ने उसे ढाढ़स बांधते हुए कहा-

-हे सुन्दरी! तुम खेद न करो, भगवान भला करेंगे।

-महात्मन! आप योगिराज हैं तनिक सोच कर बतलाइये कि मैं जवान मेरे पुत्र बूढ़े, इस विपरीत घटना का कारण क्या है?

-हे भद्रे! तुम चिन्ता मत करो मैं इसी समय सोच विचार कर इस विचित्र घटना का कारण बतलाता हूँ।

सूतजी कहते हैं कि शौनक जी, पलभर विचार करके नारदजी ने कहा-

हे भद्रे! ध्यानपूर्वक सुनो। तुम्हारे दुःख का कारण केवल कलयुग है। इसने सभी के आचार-विचार दूषित कर रखे हैं। सभी प्राणी पापी, कुकर्मी और छली होकर आसुरी वृत्ति वाले हो गये है। सज्जन कष्ट पाते हैं और दुर्जन मौज करते है। पृथ्वी इतनी पापमयी होती जा रही है कि शेष नारायण को इसका भार असह्य होता जा रहा है। तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों का कहीं पर आदर नहीं होता। तुम्हारे जर-जर होने का यही कारण है। वृन्दावन धाम धन्य है यहां आकर तुम पुनः जवान हो गई हो किंतु पुत्रों को यहां भी सम्मान न मिलने से उनका बुढ़ापा नहीं गया।

(शेष अगले अंक में)

भगवत्तत्त्व–एक विवेचन

– रवीन्द्र नाथ –

मनुष्य अपनी उन्नति और पारलौकिक कल्याण के लिये जिस तत्व या शक्ति का भजन–पूजन करता है, उसका नाम भगवान है। भगवान शब्द की उत्पत्ति 'भज सेवायाम्' धातु से हुई है। भजन में सेवा की प्रधानता है। स्पष्टतया, जिस शक्ति के सम्मुख साधक आत्मसमर्पण कर उनका सेव्य के रूप में पूजन–अर्चन करता है, वह शक्ति उसके लिये भगवान है। ब्रह्म का वह रूप, जिससे जगत् का पालन–रक्षण होता है, वह तत्व भगवत्तत्त्व है।

सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व जो चेतनतत्व विद्यमान था, उसे ब्रह्म नाम से सम्बोधित किया जाता है। ब्रह्म का गुण है– बृहत्, वृद्धि एवं विशालता। जिस तत्व में सब कुछ परिव्याप्त हो जाये अथवा जिससे सब कुछ व्याप्त हो रहा है या जो सब में व्याप्त है, उसे ब्रह्म कहते हैं। ऐतरयोपनिषद् में आता है कि ईश्वर ने जीवों की रचना के बाद मूर्धाद्वार से जीवों के शरीर में प्रवेश किया। 1/3/11)

भगवान कृष्ण गीता में भी कहते हैं कि वे सभी प्राणियों में विद्यमान रहते हैं (10/31)। इससे स्पष्ट होता है कि भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं। कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ भगवान विद्यमान न हों। यह सकल जगत उनके कारण ही क्रियाशील है। मनुष्य परमात्मा के अभाव में कोई भी क्रिया करने में असमर्थ है। जीवधारियों में आत्मा के रूप में जो तत्व विद्यमान है, उसका सीधा सम्बन्ध ब्रह्म से जुड़ा रहता है। ईश्वरांश के निकलते ही शरीर की इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं। यदि आत्मतत्व से भगवत्तत्व भिन्न होता तो आत्मा द्वारा शरीर का त्याग कर दिये जाने पर भी भगवत तत्व की पृथक् शक्ति से शरीर क्रियाशील बना रहता है। किंतु ऐसा न होने से आत्मतत्व व भगवत्तत्व के पारस्परिक सम्बन्धों की पुष्टि होती है। ऐतरयोपनिषद्–(1/2/4) में ही आता है कि पुरूष–शरीर में क्रियाशीलता लाने के लिये ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, सूर्य, दिक्पतियों, चन्द्रमा तथा जल आदि देवताओं को उसमें प्रवेश करने का आदेश दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि इन देवताओं की शक्ति पाकर मानव–शरीर की इन्द्रियां क्रिया करने में सक्षम होती हैं। फिर क्रियाशील होने के लिये शरीर को आत्मतत्व के रूप में भगवत्तत्व के अंश की आवश्यकता। इससे इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि सृष्टि के विकास के साथ–साथ भगवत्तत्व भी व्यापक होता जाता है।

जगत–उत्पत्ति के कारणों पर चिन्तन–मनन करने से भी तीन तत्वों का पता चलता है। ये हैं–प्रकृति, काल और ईश्वर। इनमें भी भगवान की प्रधानता स्पष्ट है। जगत के स्वरूप का अध्ययन करने से सृष्टि प्राकृतिक पंचभूतों का पुंज दिखायी देती है। वस्तुतः कोई भी ऐसा पिण्ड नहीं है, जिसकी रचना में अग्नि, वायु, आकाश, जल और पृथ्वी का संयोग न हुआ हो। किंतु मात्र

पंचतत्वों के संयोग से विभिन्न रूपों की रचना होना तथा उनमें चेतना का संचार होना सम्भव नहीं है। लोक में कलाकार अनेक सुन्दर मूर्तियों की रचना करने के पश्चात् भी उनमें चेतना का संचार नहीं कर पाते हैं। प्रकृतिवादी विज्ञान इस बात का उत्तर देने में असमर्थ है कि पंचभूतों द्वारा निर्मित शरीर में किस प्रकार चेतनता आती है। पर ईश्वरवादी विद्वान् इसका उत्तर देने में समर्थ है कि इसके लिये स्वयं ब्रह्म शरीर में कैसे प्रवेश करता है। इस प्रकार प्रकृति अथवा पंचतत्वों का संयोग तब तक कोई सजीव या निर्जीव रचना करने में सक्षम नहीं है, जब तक उन्हें किसी अलौकिक सत्ता द्वारा शक्ति नहीं प्राप्त होती है। यही अलौकिक सत्ता प्रकृति में भी भगवतत्व के रूप में क्रियाशील रहती है।

कालतत्व के बारे में विचार करने पर यह पता चलता है कि यह जगत समय द्वारा नियन्त्रित है। सभी सजीव, निर्जीव तथा वृक्षों आदि के उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का जो क्रम देखने में आता है वह जगत के कालबद्ध सिद्ध करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। लोकदृष्ट प्रमाणों से यह प्रमाणित होता है कि जीवों की उत्पत्ति किसी काल-विशेष के लिये होती है और समय पूर्ण हो जाने पर उनकी मृत्यु हो जाती है। वृक्ष और पौधों की भी समय पूरा हो जाने पर मृत्यु हो जाती है, जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है। सृष्टि का नियम भी यही है। ऋग्वेद में आया है कि पूर्वकाल में अनेक सृष्टियाँ बीत चुकी (वही 10/190/3)। इससे कालतत्व के स्वतन्त्र अस्तित्व होने की पुष्टि होती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या काल जगत-उत्पत्ति का हेतु होने में सक्षम है? कालवादियों की दृष्टि में वह ऐसा शक्तिमान् ही माना गया है। उसे शक्ति दूसरे से नहीं प्राप्त करनी पड़ती। सृष्टि और जीवों का जीवन-काल निर्धारित करने की शक्ति काल में ही है। गतिमान रहना भी काल का गुण है, जिसमें परिवर्तन भी सम्मिलित है। जन्म-मृत्यु और रचना-विनाश काल के उक्त गुण के कारण ही होते हैं। इन गुणों के आधार पर काल सर्वशक्तिसमान् तत्व कहा जाता है। अन्य मत में काल को गति और शक्ति जिस तत्व से ग्रहण करनी पड़ती है, उसे ईश्वर कहते हैं। यही ईश्वर तत्व प्रकृति और काल का ईश्वर अर्थात् शासक होता है।

जगत-उत्पत्ति का हेतु वही तत्व हो सकता है, जिसमें पूर्ण तत्व हो। पूर्णतत्व का विवेचन करते हुए बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया- 'परमात्मा' पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, उसी पूर्ण परमात्मा से यह जगत उत्पन्न हुआ है, पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर परमात्मा पूर्ण ही बच रहता है। पुरुष शब्द भी पूर्णता का वाचक है। इसीलिये वंशजों की उत्पत्ति का हेतु पुरुष माना जाता है। पुरुष में पूर्णता ईश्वर की विद्यमानता से आती है। सृष्टि-रचना में ईश्वर नाम चेतन-तत्व ने अपने गुणों को भरसक प्रकट करने का प्रयास किया है। उसने जीवों को इस योग्यता से युक्त रखा है कि वे अपने वंशजों की उत्पत्ति तथा पालन कर सकें। मनुष्य में तो ईश्वर ने वह गुण दिया है जिससे वह ब्रह्म के अति निकट पहुँच सकता है। मनुष्य-योनि को देखकर हमें भगवतत्व का सहज ही बोध हो जाता है।

यद्यपि सभी जीवों में भगवतत्व की विद्यमानता है, तथापि मनुष्य में वह तिर्यगादि से

अधिक रूप में विद्यमान रहता है। तभी तो मनुष्य ईश्वर की जानकारी तथा जगत–उत्पत्ति के कारणों की मीमांसा करने में अधिक सक्षम है। इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्य से भिन्न योनि के जीव चेतन होने पर भी पूर्ण नहीं है। पुरुष अर्थात् मनुष्य में पूर्णता के सभी लक्षण दिखायी देते हैं। पुरुष और भगवतत्व की पूर्णता में यह अन्तर है कि मनुष्य ब्रह्म और उसके गुणों की जानकारी प्राप्त कर सकने तक ही पूर्ण है। मनुष्य में सृष्टि रचना और संहार करने की पूर्णता नहीं है। इस दृष्टि से विचार करने पर मनुष्य और भगवतत्व की पूर्णता का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इससे जगत–उत्पत्ति का हेतु भगवतत्व ही सिद्ध है। इस प्रकार परम शक्ति के तीन रूप सामने आते है, यथा– ब्रह्म, ईश्वर एवं भगवान! ब्रह्म चराचर जगत का धाता और विधाता है। नाम–रूपादि से रहित होने से ब्रह्म केवल अनुभूति का विषय है। इसे तप, योग और साधन से जाना जा सकता है। ब्रह्म को प्राप्त करने का एकमात्र साधन ज्ञान है।

ब्रह्म तटस्थता का वाचक है। ईश्वर जगत की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के लिये क्रियाशील रहता है। इसे उपासना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह उपासना का विषय इसलिये बन जाता है कि ईश्वर के गुणों और रूपों का वर्णन सम्भव है। जगत के शासक के रूप में ईश्वर मनुष्यों की पहुँच के अंदर होता है। मनुष्यों के कर्मों का साक्षी ईश्वर ही है। वह मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों का निर्णय भी करता है और मृत्योपरान्त पुनर्जन्म के लिये योनियों का निर्धारण भी करता है। पूजन–अर्चन करते समय त्रिशक्ति का ही आह्वान किया जाता है। मन्दिरों की मूर्तियों में भगवान के रूप की ही प्रतिष्ठा की जाती है। स्वरूपवान होने से आधुनिक काल में भगवान रूप ही अधिक व्यापक हो गया है। भगवान को प्राप्त करने के लिये श्रद्धा और भक्ति का मार्ग अपनाया जा सकता है। भक्ति द्वारा भगवान की प्राप्ति का मार्ग सरल होने से वह अल्पज्ञों द्वारा भी ग्राह्य है। इस प्रकार यह भगवान के निर्गुणरूप का वर्णन हुआ। धर्म की रक्षा एवं भक्तों की इच्छा–पूर्ति के लिये वे ही पुनः राम, कृष्णादि अवतारों में भी आकर अनेक लीलाएँ करते हैं।

स्थिरता निर्विकल्प समाधि है तथा एकाग्रता सविकल्प समाधी है। सविकल्प का तात्पर्य है कि उस अवधि में आवश्यक विचारों का मन क्षेत्र में अपना काम करते रहना। मन की स्थिरता सर्वथा भिन्न बात है। उसे एकाग्रता से मिलती–जुलती स्थिति तो कहा जा सकता है; किन्तु दोनों का सीधा सम्बन्ध नहीं है। जिसका मन स्थिर हो उसे एकाग्रता का लाभ मिल सके अथवा जिसे एकाग्रता सिद्ध है उसे स्थिरता प्राप्त हो जाये – यह आवश्यक नहीं।

भगवान और भक्त का सम्बन्ध

– श्री कृष्णराम दुबे –

जागतिक सम्बन्धों की सार्थकता परमात्मा से सम्बन्ध की स्थापना में ही है। सबको भगवान के नाते से ही अपना मानना चाहिये। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं। (विनयपत्रिका)

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। मानिअ सबहि राम के नाते।। (रामचरितमानस)

तुलसीदास जी की यही याचना है। वे हाथ जोड़कर वरदान माँगते हैं–'हे शिव! मुझे जन्म–जन्म में ऐसी स्थिति दीजिये, जिसमें भगवान राम के नाते ही मेरा किसी से नाता हो और श्रीराम के प्रेम के कारण ही मेरा प्रेम हो'–

नातो नाते राम के, राम सनेह सनेहु।
तुलसी माँगत जोरि कर, जनम जनम सिव देहु।।

(दोहावली 89)

जिन भगवान के सम्बन्ध से ही सब सम्बन्ध मान्य हैं, उसके स्वरूप की जिज्ञासा स्वाभाविक है। वह सबका आधार है– 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' वही सबकी जिज्ञासा का विषय है। श्रुतियाँ निर्दिशेष और सविशेष ब्रह्म की परिचायिका के भेद से दो प्रकार की है– निर्विशेष–निर्देशक श्रुतियाँ–अस्थूल, अनणु, अहस्व आदि हैं। सविशेष लिङ्ग–श्रुतियाँ–सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस आदि हैं। वे ही सच्चिदानन्दघन भावस्वरूप हैं; वे ही ज्ञान, प्रेम, दया, समता आदि अनन्त गुणों से युक्त हैं और वे ही लोक का उद्धार करने के लिये दिव्य लीलाओं से सम्पन्न भी हैं। श्रीमद्भागवत में भगवान शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है–

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक मनन्तरं त्वबर्हिह्म सत्यम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति।।

(5/12/11)

'विशुद्ध परमार्थरूप, अद्वितीय, भीतर–बाहर के भेद से रहित तथा परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु (ब्रह्म) है। वह सर्वान्तर्वर्ती और सब प्रकार निर्विकार है। उसी का नाम 'भगवान' है, जिसे पण्डितजन 'वासुदेव' कहते हैं।

शुद्ध चेतन ब्रह्म प्रकाश में छाया नहीं रह सकती, किंतु पुरुष में प्रकृति स्थित है। शुद्ध प्रकृति को माया या विद्या और मलिन प्रकृति को अज्ञान या अविद्या कहते हैं। जो सत्वगुण किसी प्रकार रज–तम से दब नहीं पाता, वह शुद्ध सत्व है। जो सत्वगुण रज–तम से दबा है, वह मलिन सत्व या अविद्या है। माया का अधिष्ठान और माया में चेतन का आभास दोनों को मिलाकर ईश्वर कहा जाता है। अविद्या में चेतन का आभास और अविद्या का अधिष्ठान चेतन दोनों मिलाकर जीव

कहलाता है। इस प्रकार सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ ईश्वर सृष्टि-स्थितिलय का कर्ता है। जीव अन्तः करणावच्छिन्न होकर परिच्छिन्न, देहाभिमानयुक्त और अल्पज्ञ है। परमात्मा और जीवात्मा के संबंध को प्रकाशित करने वाले वेदवाक्यों को प्रमाण मानते हुए भी उनकी व्याख्या के भेद से वादों में भेद दिखायी पड़ता है। इस संबंध में प्रमुख आचार्यों के मतों की कुछ चर्चा यहाँ की जा रही है। ये सभी आचार्य वेद-वाक्यों को प्रमाण मानते हैं और हमारे परम मान्य हैं।

(1) **आद्यशंकराचार्य** – आप ब्रह्म और जीवात्मा में अभेद-सम्बन्ध मानते हैं एवं अद्वैतवादी हैं। ये **'तत्वमसि'** इस उपनिषद वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं– तत् वह ब्रह्म, त्वम्–तुम, असि–हो अर्थात तुम ब्रह्म हो। (2) **रामानुजाचार्य** ब्रह्म और जीव में भेद-विशिष्ट अभेद सम्बन्ध मानते हैं। ये विशिष्टाद्वैतवादी कहलाते हैं। इनके मत में जीवात्मा और परमात्मा दोनों में परस्पर अङ्गाङ्गिभाव है। इनके कथानानुसार भी 'तत्वमसि' का अर्थ 'वह तुम हो' है, किंतु जीवात्मा (तुम) अङ्ग है और परमात्मा (वह) अङ्गी। (3) **माध्वाचार्य** द्वैतवादी हैं। माध्वमत का नाम 'ब्रह्मसम्प्रदाय' भी है। मध्वाचार्य ब्रह्म और जीव में शाश्वत भेद मानते हैं। वह भगवान को स्वामी और जीवात्मा को सेवक मानते हैं। वे **'तत्वमसि'** की व्याख्या इस प्रकार करते हैं–तत् (तस्य) उसके, त्वम्– तुम, असि– हो, अर्थात तुम उसके सेवक हो। (4) **निम्बार्काचार्य** भेद तथा अभेद दोनों मानते हैं। अतः वे द्वैताद्वैतवादी कहे जाते हैं। इसके अनुसार जैसे स्फुलिङ्ग और अग्नि परस्पर अभिन्न और भिन्न दोनों हैं, वैसे ही जीव–ईश्वर भी भिन्नाभिन्न हैं– इनके अनुसार 'तत्वमसि' की व्याख्या है 'वह तुम हो' किंतु इसका बोध वे पृथक् ढंग से बताते हैं। (5) **बल्लभाचार्य** का मत शुद्धाद्वैत कहलाता है। इनके मतानुसार परमात्मा कारण रूप से अपने कार्यरूप जीवात्मा में रहता है। जीवात्मा परमात्मा से उत्पन्न है, अतः दोनों में अभेद है। किंतु परमात्मा अनुत्पन्न हैं और जीवात्मा उत्पन्न, इसलिये दोनों में आत्यन्तिक अभेद नहीं है। इनके अनुसार 'तत्वमसि' की व्याख्या है– 'तस्मात् त्वमसि' है, अर्थात् तुम उससे हो। (6) **चैतन्य** के मत से परमात्मा में अचिन्त्य शक्तियाँ हैं, जिनमें मुख्य तीन हैं– स्वरूपशक्ति, तटस्थ-शक्ति (जीवशक्ति) और मायाशक्ति। जीवात्मा परमात्मा की शक्ति है। जीवात्मा में भी अचिन्त्य शक्ति है। इस प्रकार परमात्मा से वह न तो बिल्कुल भिन्न है और न बिल्कुल अभिन्न है। चूंकि तर्क में भिन्न और अभिन्न एक साथ मानने में व्याघात दोष है, अतः उनमें 'अचिन्त्यभेदाभेद' मानना चाहिये।

उपर्युक्त सभी आचार्यों ने अपने मत के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया है कि सभी रूपों में भगवान से भक्त का प्रिय सम्बन्ध भक्ति है। भगवान से अपने सम्बन्ध की अनुभूति प्राप्त करने के मार्ग में कर्म, ज्ञान और भक्ति सभी की गणना है, अतः ज्ञान–कर्मयुक्त भक्ति श्रेष्ठ है। इनके सामञ्जस्य में कदाचित् निम्नाङ्कित दृष्टान्त सहायक हो।

एक बार श्रीरामचन्द्र के सामने ज्ञानी और भक्त ऋषियों की सभा लगी थी। उसी में उन्होंने श्री हनुमान से पूछा कि तुम कौन हो? श्री हनुमान ने अपनी धारणा बताते हुए उत्तर दिया–

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवबुद्धया त्वदंशकः।

वस्तुतस्तु तदैवाहमिति मे निश्चिता मति:।। (मौक्तिकोप.)

'मैं देहदृष्टि से आपका दास हूँ, जीवदृष्टि से आपका अंश हूँ, अर्थात वास्तव में और ज्ञान की दृष्टि से जो आप हैं वही मैं हूँ।'

भक्ति परमप्रेमरूपा है। जगत के किसी प्राणी के प्रति अनुरक्ति परमप्रेमरूपा नहीं हो सकती। जगत का जो कुछ प्रिय होता है, वह मनुष्य को अपने लिये प्रिय होता है, उस पदार्थ के लिये नहीं। जागतिक दृष्टि वस्तुओं अथवा प्राणियों को आत्मा से भिन्न जानती है। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा था– **'न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति** (बृह. उ. 2/4/5)।' सबके प्रयोजन के लिये सब प्रिय नहीं होते, अपने ही (आत्मा के ही) प्रयोजन के लिये सब प्रिय होते हैं। भगवान के प्रति परमप्रेम के तारतम्य से ही भगवान की पूजा, कथा आदि में अनुराग को भी भक्ति कहना उचित जान पड़ता है– **'पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्य:। कथादिष्विति गर्ग:।'** भगवद्भक्ति प्राणी के सन्तोष और सफलता की आकांक्षा को ही पूर्ति नहीं करती बल्कि उसे वास्तविक तृप्ति, सिद्धि और अमरत्व प्रदान करने वाली है– **'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।'** (भ. सू. 4)। गर्गसंहिता में भी भगवान शिव के वचन हैं–

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंग: क्वचन समुद्रो न तारंग:।।

(गर्गसंहिता., अश्वमेधखण्ड 39/4)

'नाथ! मुझमें और आप में भेद न होने पर भी मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं, क्योंकि तरंग ही समुद्र की होती है, तरंग का समुद्र नहीं होता।' प्रत्यक्ष नामरूपात्मक उपासना के रूप में भक्तिमार्ग को भागवत धर्म का बल मिलता है। भागवतधर्म के चार उपभेद ये हैं– (1) रामानुजाचार्य द्वारा संस्थापित श्रीसम्प्रदाय (2) मध्वाचार्य द्वारा संस्थापित ब्रह्मसमाज (3) विष्णुस्वामी का रुद्रसम्प्रदाय और (4) निम्बार्काचार्य का सनकादिक सम्प्रदाय। वैष्णव–शास्त्रकारों ने भगवान के प्रति रति के पाँच भेद कर भक्ति के पाँच भाग किये हैं– शान्त, प्रीति, सख्य, वात्सल्य और मधुर (या उज्ज्वल)। विधि सम्बन्धों के रूप में भगवान के प्रति भक्ति उमड़ती है। स्वामी के रूप में–**सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।**

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।। (मानस 4/3)

सखा के रूप में– **सखा प्यारे कृष्ण के; गुलाम राधारानी के।**

पतिरूप में– **मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।**
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।

बालक रूप में– **व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।**
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद।। (मानस 1/198)

–इत्यादि

भक्ति के चाहे जिस मार्ग पर चलें, जैसा कि ऊपर उद्धृत है, जो बात सबके लिये स्वीकार्य है उसे तुलसीदास जी ने इस एक चौपाई में कह दिया है–

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहिं राम के नाते।।

इसमें प्रस्थान–बिन्दु भगवान हैं, भगवान के अतिरिक्त जो कुछ दृश्यमान है–उसमें भगवान की सत्ता ही देखना है– 'एकोऽहं बहु स्याम्', एकमेवाद्वितीयम्' जगत में भासमान छितराये हुए इन नातों को भी तुलसीदास जी ने जिस प्रकार उपसहृत किया है उसे देखें, भगवान कहते हैं–

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बरि डोरी।।

इसमें प्रस्थान–बिन्दु जगत के भासमान नाते–संबंध हैं, साध्य भगवान का सच्चा संबंध है। इसके द्वारा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की रीति से अनुभूति होती है। तुलसीदास जी कहते हैं–

यहि जग मे जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसीदास प्रभु ही सों, होहि सिमिटि इक ठाई।।

वे इसी को भ्रमजनित, व्यर्थ एवं दुःखद चेष्टाओं से बचने का मार्ग भी बताते हैं–

निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों हरषि हृदय नहि आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहिं जनम सिरान्यो।।

विश्वात्मा भगवान के प्रति अर्पित होकर सभी 'मेरापन' (जागतिक सबंधों की ममता) बहा देने का अपना निश्चय दुहराते हैं–

नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं।
यह छर मार डारि तुलसी जग जाकों दास कहैहौं।।

भगवान से भक्त के संबंध की सीमा नहीं–

मोहि तोहि नाते अनेक, मानिए जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु, चरन सरन पावै।।

जब तक जीव भगवान से अपना सच्चा संबंध नहीं पहचानता, तब तक वह जगत–जाल में नाचता रहता है; जब पहचान लेता है, तब प्रेमभावना से बंधे हुए भगवान स्वयं नाचते दिख पड़ते हैं–

ऐसी प्रीति बढ़ी बृंदाबन, गोपिन नाथ नचाई।
सूर–क्रूर इहि लायक नाहीं, कहँ लगि करौं बड़ाई।।

भगवान की प्रतिज्ञा है– 'हम भगतन के भगत हमारे।'

जैसे सरिता मिले सिंधु को बहुरि प्रवाह न आवे हो।
ऐसे सूर कमल–लोचन ते चित नहिं अनत डुलावे हो।' (सूरसागर)

भगवान और भक्त–सम्बन्ध के विषय में हमें आश्वस्त करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी स्पष्ट कहते हैं–

तुलसी अपने राम को रीझ भजहु वा खीज।
खेत परे सो जामि है उलटो सीधो बीज।।

अतः श्रीभगवान का स्मरण सदा प्रेमभाव से करना चाहिये –

'रामे चित्तलयः सदा भवतु मे।'

कर्म–ज्ञान

निर्मला चन्देल (उदयपुर)

उचित कर्म विधि का विधान होता है।
स्नेहभाव से बंजर में भी पुष्प अंकुरित होता है।।
दुःख के झोंको से मन विचलित हो जाता है।
नम्रता से जग में जो चाहो मिल जाता है।।
कर्म की अनुचित्तता से फल–विफल हो जाता है।
मानव मन को भ्रमित कर जीवन कष्टमय हो जाता है।।
अच्छे कर्म से शत्रु भी मित्र हो जाता है।
दिव्य गुणों की सुगंधता अपनी ओर समा जाती है।।
सदाचार के सागर पथ पर कमल पुष्प भी खिल जाते हैं।
कर्महीन विचारों को सिद्धयोग ज्ञान की निश्चिन्तता से जीत सकेंगे।।
सुमधुर चिन्तन जीवन के सकारात्मक आधार बनेंगे।
'अनन्तश्री' जी के अनन्त सद्विचारों से जीवन की ज्योति बनेगी।।
कर्म का ज्ञान बनेगा
मानव आत्मा भी आध्यात्मिक हो जायेगी।
गुणवान, शक्तिवान, भक्तिवान बन जायेगी।।

वेद में गायत्री–तत्व

– डॉ. श्रीनिवास शर्मा –

विश्व–वाङ्मय में वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। ये ऋषियों की तपःपूत अनुभूति के प्रकाश–पुंज हैं। यास्क ने अपने विश्रुतग्रन्थ निरुक्त (1/6/60) में संकेत किया है– **'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः'** अर्थात् ऋषियों ने धर्म का साक्षात्कार किया था। वे वेदमन्त्रों के द्रष्टा थे, रचयिता नहीं। वस्तुतः साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत अध्यात्म शास्त्रीय तत्वों के निदर्शन ही वेद हैं। वेद ही भारतीय संस्कृति, समाज, धर्म, दर्शन, जीवन और विविध विद्याओं के मूल उत्स हैं।

वेद के छः अङ्ग हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। वेदमन्त्रों के छोटे–छोटे समूह 'सूक्त' कहलाते हैं। प्रत्येक सूक्त के ऋषि, देवता और छन्द का ज्ञान आवश्यक माना गया है। इनके ज्ञान से हीन जो व्यक्ति मन्त्रों से जप, यज्ञ, उपासना आदि करता है, उसका अनीष्ट फल उसे प्राप्त नहीं होता।

छन्द का वेदों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। वेद छन्दों में रचित हैं। पाणिनि ने छन्द का प्रयोग वेद के अर्थ में अनेक बार किया है। वेद के 'पुरुषसूक्त' में आया है कि सम्पूर्ण रूप से हुत उस यज्ञ से ऋचाएँ तथा सामवेद उत्पन्न हुए। छन्द तथा यजुष् भी पैदा हुए। इन छन्दों में गायत्री प्रमुख छन्द है। अमरकोश में कहा गया है– **'गायत्री प्रमुख छन्दः।'** वेदों में प्रमुख रूप से सात छन्दों का प्रयोग देखने में आता है– गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती, पंक्ति तथा जगती। वेद के उपर्युक्त छन्दों से गायत्री और उष्णिक् को छोड़कर शेष छन्द चार–चार पाद (चरण) के हैं। गायत्री और उष्णिक् तीन–तीन पादों के हैं। इसलिये गायत्री को त्रिपदा गायत्री कहा गया है।

वेदमन्त्रों के छन्द वर्णिक छन्द हैं। उनमें लघु–गुरु की गणना से छन्द निर्मित नहीं होते। केवल अक्षर गिने जाते हैं। आधे अक्षर गणना में नहीं आते। गायत्री छन्द में 8,8,8 के क्रम से 24 अक्षर होने चाहिये, परंतु गायत्री के पहले पाद में 7 अक्षर हैं। इसलिये यह भी प्रसिद्धि है कि **'तत्सवितुर्वरेण्यं'** इस पाद में **'वरेण्यं'** की जगह **'वरेणियं'** ऐसा पढ़ना चाहिये, जिससे एक अक्षर बढ़ जायेगा–

त त् स वि तु र्व रे णि य– इस तरह उच्चारण करने पर पहले पाद में भी 8 अक्षर हो जायँगे।

(बृहदारण्यकोपनिषद् के आधार पर गायत्री को चार पाद वाली कहा गया है। चार पाद वाली गायत्री में **'भूमिरन्तरिक्ष द्यौः'** को प्रथम पाद कहा गया है। **'ऋचो यजू ंषि सामानि'** को द्वितीय पाद कहा गया है। **'प्राणोऽपानो व्यानः'** को तृतीय पाद कहा गया है। गायत्री के ये तीन पाद हैं और परब्रह्म परमात्मा चतुर्थ पाद है।)

गायत्री मन्त्र गायत्री छन्द में रचा गया अतिप्रसिद्ध मन्त्र है। इस स्तुति–मन्त्र का गायत्री के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इस मन्त्र को ही गायत्रीमन्त्र कहा गया है। मन्त्र इस प्रकार है–

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

यह मन्त्र यजुर्वेद (3/35) में आया है। यही मन्त्र सामवेद में आया है और प्रायः सभी वेदों में किसी–न–किसी संदर्भ में इसका बार–बार संकेत मिलता है। कहीं–कहीं तो गायत्री और वेद को समान अर्थ में भी प्रयुक्त किया गया है। गायत्री मन्त्र से पहले 'ॐ' लगाने का विधान है। 'ॐ' को अनेक अर्थों में परमात्मा का वाचक कहा गया है। उसे प्रणव कहा जाता है। प्रणव परब्रह्म का नाम है– **'तस्य वाचकः प्रणवः'**। उपनिषदों में इसकी व्युत्पत्ति बतलाते हुए कहा है **'प्राणान्सर्वान्परमात्मनि प्रणाययतीत्येतस्मात्प्रणवः'** (अथर्वशिखोपनिषद्) अर्थात् प्राण को परमात्मा में लीन करने के कारण इसे 'प्रणव' कहा गया है। वेद का आरम्भ 'ॐ' से किया जाता है– **'ओङ्कारः पूर्वमुच्चार्यस्ततो वेदमधीयते'** इसलिये गायत्रीमन्त्र से पहले 'ॐ' लगाया जाता है।

बृहन्नारदीयोपनिषद् में 'ओम्' के अ+उ+म् इन तीन अक्षरों को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव का रूप माना गया है। गीता में इसको एकाक्षर ब्रह्म कहा गया है– **'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।'** ऐसा भी वर्णन आता है कि 'अ' कार परमात्मा का वाचक है, 'उ' कार का अर्थ जीव का परमात्मा से अनन्य सम्बन्ध है और 'म' कार का अर्थ है जीवात्मा, जो परमात्मा का अंश है।

भूः भुवः स्वः– ये तीनों महाव्याहृति कहलाते हैं। ये महारहस्यात्मक हैं। ये गायत्रीमन्त्र के बीज हैं। गायत्रीमन्त्र से पहले 'ॐ' के बाद **'भूः भुवः स्वः'** लगाकर ही मन्त्र का जप करना चाहिये। बीजमन्त्र मन्त्रों के जीवरूप होते हैं। बिना बीजमन्त्र का मन्त्र–जप करने से वे साधना का फल नहीं देते। विभिन्न देवताओं के बीजमन्त्र अलग–अलग होते हैं, जैसे **'ऐं'** सरस्वती का, **'ह्रीं क्लीं'** काली का, **'श्रीं'** लक्ष्मी का, **'गं'** गणपति का। प्रायः बीजमन्त्रों के साथ अनुस्वार अर्थात् बिन्दु लगाया जाता है। 'ॐ' प्रणव को सभी जगह बीजमन्त्रों के प्रारम्भ में लगाने का विधान है। अन्त में यथासम्भव **'नमः'** लगाना चाहिये। आदि में प्रणव अर्थात् 'ॐ' लगाकर अन्त में **'नमः'** लगाने वाले मन्त्र शान्ति, भोग एवं सुख देने वाले होते हैं। अन्त में **'नमः'** वाले मन्त्र देवता को वश में करने वाले होते हैं। बिन्दु अन्तवाले मन्त्र देवता को प्रसन्न करने वाले होते हैं–

विन्द्यन्तं प्रीतिकृच्चैव नमोऽन्तं च वशीकृतं।
तमोऽन्तः प्रणवाद्यश्च शान्तिभोगसुखप्रदा।।

गायत्रीमन्त्र के देवता सविता हैं। यह मन्त्र सावित्री भी इसीलिये कहलाता है। गायत्री का शाब्दिक अर्थ है– **'गायत् त्रायते'**– गाने वाले का त्राण करने वाली।

ॐ (प्रणव) और महाव्याहृतियों सहित गायत्रीमन्त्र इस प्रकार है–

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

इसका अर्थ यह है कि 'पृथ्वीलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक में व्याप्त उस श्रेष्ठ परमात्मा (सूर्यदेव) का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ कर्मों की ओर प्रेरित करे।

गायत्री की उत्पत्ति के संबंध में आर्ष–ग्रन्थों में विचार किया गया है। कहते हैं ॐकार से व्याहृति हुई। व्याहृतियों से गायत्री हुई– **'ओङ्कारादव्याहृतिरभवद् व्याहृत्या गायत्री।'** गायत्री का संबंध वेद से इस तरह बताया गया है कि गायत्री से सावित्री, सावित्री से सरस्वती, सरस्वती से सभी वेद, सब वेदों से सारे लोक और अन्त में सब लोकों से प्राणी उत्पन्न हुए।

गायत्रीमन्त्र के ऋषि विश्वामित्र हैं। गायत्रीरहस्योपनिषद् में गायत्री के 24 अक्षर बतलाये गये हैं– **'चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री त्रिपदा वा चतुष्पदा'** अर्थात् 24 अक्षरों वाली गायत्री तीन पाद या चार पाद की है। प्रत्येक अक्षर के ऋषि के नाम भी दिये हैं। चौबीसवें ऋषि का उल्लेख करते समय बताया गया है कि ये चौबीसवें ऋषि आङ्गिरस विश्वामित्र हैं–**चतुर्विंशमाङ्गिरसं विश्वामित्रमिति प्रत्यक्षराणामृषयो भवन्ति।** अर्थात् चौबीसवें अक्षर के ऋषि आङ्गिरस विश्वामित्र है। इस तरह प्रत्येक अक्षर के ऋषि होते हैं अर्थात् गायत्री के चौबीस अक्षर हैं तो उनके दृष्टा चौबीस ऋषि हैं।

गायत्री का महत्व श्रीमद्भागवतमहापुराण के उन वचनों से सहज ही उभर कर सामने आ जाता है, जहाँ गायत्री को पुरुषसूक्त, वेदत्रयी, भागवत, द्वादशाक्षर आदि के समकक्ष वर्णित किया गया है। वहाँ 16 चीजें समान बतलायी गयी हैं–

वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च।
त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च।।
द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः।
ब्राह्मणश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा।।
तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च।
एतेषां तत्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते।।

(महात्म्य 3/34–36)

अर्थात् वेदादि (ॐकार), वेदमाता (गायत्री), पुरुषसूक्त, वेदत्रयी, भागवत, द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**), द्वादशात्मा (सूर्यभगवान्), प्रयाग, संवत्सरात्मक काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र (यज्ञ), सुरभि, द्वादशी तिथि, तुलसी, वसन्त और पुरुषोत्तम भगवान्–इनमें विद्वान् पृथक्–भाव नहीं देखते। अर्थात् ये सब समान हैं। जो कुछ भी उच्च, श्रेष्ठ, वरेण्य, पवित्र और पूज्य है, वह गायत्री है और वही वेदों का तत्व है।

गायत्री वेद के और अनेक तत्वों की तरह परवर्ती वाङ्मय में कैसा प्रभाव रखती है, इसको लक्ष्य करके संतों ने कहा है कि श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में 24 हजार श्लोक हैं। उनमें प्रत्येक एक हजार के पहले–पहले अक्षर को ले लिया जाये तो पूरा गायत्रीमन्त्र बन जाता है।

वैदिक वाङ्मय के इस अति प्रसिद्ध मन्त्र के पढ़ने–जपने के अनेक प्रशंसापरक महात्म्य

वर्णित किये गये है। उसके 'धीमहि' और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' शब्द समूहों का आश्रय लेकर अनेक देवी–देवताओं की गायत्री बनायी गयी है। गणपत्युपनिषद् में गणेश की गायत्री इस प्रकार रचित है–

ॐ एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।

देवीभागवत में भगवती की स्तुति इसी मन्त्र की छवि–छाया से पूर्ण है–

सर्वचैतन्यरूपां तमाद्यां विद्यां च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।।

देवीभागवत की समाप्ति पर भी इसी तरह की देवी–गायत्री मिलती है–

सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम्।
नमामि हीमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात्।।

'विद्महे धीमहि' और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' शब्दों को गायत्री–माता से गृहीत करके और भी देवी–देवताओं की गायत्री रची गयी है। ये गायत्रीमन्त्र की पवित्रता, उच्चता और सर्वोत्कृष्ट मन्त्रत्व को प्रकाशित करने वाली है। उनमें से कुछ के उदाहरण द्रष्टव्य है–

राम–गायत्री– **ॐ दाशरथ्याय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात् (गायत्रीतन्त्र)।**

शिव–गायत्री– **ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् (शिवोपासना)।**

सूर्य–गायत्री– **ॐ आदित्याय विद्महे सहस्त्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् (सूर्योपनिषद्)।**

हनुमद्–गायत्री– **ॐ आञ्जनेयाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि। तन्नो हनुमान् प्रचोदयात् (गायत्रीतन्त्र)।**

उनके स्मृति ग्रन्थों में जहाँ मानव की आचार–श्रेष्ठता को व्याख्यायित किया गया है, वहाँ गायत्री–तत्व को भूयोभूय प्रतिष्ठित किया गया है। लघुहारीत–स्मृति में उल्लेख है कि द्विजों की गायत्रीमन्त्र से युक्त अंजलि–अर्घ्य से सूर्य से युद्ध करने वाले ये महादेह राक्षस नष्ट हो जाते है। वही पर यह भी आया है कि प्रातःकाल गायत्री का जप खड़े होकर करें और तब तक करें, जब तक सूर्यभगवान के दर्शन न हो जायें। संध्याकाल की गायत्री का जप बैठकर करें और जबतक तारे न दीखें तब तक करें। एक हजार बार किया गया गायत्रीमन्त्र–जप सबसे श्रेष्ठ है। यह कहा गया है कि जो नित्य गायत्री को जपता है, वह पाप से लिप्त नहीं होता– **'गायत्रीं यो जपेन्नित्यं न स पापेन लिप्यते।'** संवर्त–स्मृति (213) में आया है– **'मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्या चैव पावितः।'** अर्थात् गायत्री से बढ़कर पाप का शोधक कोई नहीं है। शंखस्मृति (12/3) में कहा गया है– **'न सावित्र्या समं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम्।'** अर्थात् सावित्री जप के समान कोई जप नहीं है और व्याहृतियों के द्वारा किये गये हवन के समान कोई हवन नहीं है। सारांश यह है कि गायत्री की श्रेष्ठता का श्रुति–स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थों में अत्यन्त प्रशंसनीय और आचरणीय व्याख्यान

मिलता है। उसके महत्व का सारभूत निम्नलिखित श्लोक ईक्षणीय है–

गायत्रीवेदजननी गायत्रीपापनाशिनी।
गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्।।
(शङ्खस्मृति 12/11–12)

अर्थात् 'गायत्री वेदों की माता है। गायत्री पापों का नाश करने वाली है। द्युलोक में और इस लोक में गायत्री से बढ़कर कोई भी पवित्र करने वाला नहीं है।'

शास्त्रों में गायत्रीमन्त्र के जप की विपुल महत्ता प्रतिपादित है। अतः जपकर्ता को चाहिये कि वह बाह्याभ्यन्तर शुद्धिपूर्वक, संकल्पादि करके अङ्गन्यास, करन्यास एवं विनियोग पूर्वक निम्न ध्यान–श्लोक के साथ जप प्रारम्भ करे–

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः।।

अर्थात् 'सूर्यमण्डल के मध्य में कमल के आसन पर विराजमान भगवान नारायण का सदैव ध्यान करना चाहिये। वे तपे हुए स्वर्ण– जैसे कान्तिमान् शरीर को धारण किये हुए हैं। उनके गले में हार, सिर पर किरीट और कान में मकरकुण्डलरत्न शोभित है। वे दोनों हाथों में शङ्ख–चक्र धारण किये हुए हैं। गायत्री का जप करते समय सूर्यमण्डल में भगवान का चिन्तन करना चाहिये।'

गायत्री सम्पूर्ण वेदों की जननी है। ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज ने माना है कि जो गायत्री का अभिप्राय है, वही सम्पूर्ण वेदों का अर्थ है। गायत्री द्वारा विश्वोत्पादक स्वप्रकाश, परमात्मा के उस रमणीय चिन्मय तेज का ध्यान किया जाता है, जो समस्त बुद्धियों का प्रेरक एवं साक्षी है। इसलिये विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य आदि जिनमें विश्वकारणता, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, साकारता, निराकारता आदि है, वे सभी परमेश्वर हैं और सभी गायत्रीमन्त्र के अर्थ हैं। इसलिये पंचदेवों का या अपने किसी भी इष्टदेव– राम, कृष्ण, दुर्गा अथवा हनुमान् का ध्यान गायत्रीमन्त्र द्वारा किया जा सकता है। अतः गायत्री वेद और भारतीय संस्कृति का प्राण है।

★★★

मनुष्य जीवन भर शरीर को ही अपना अस्तित्व मानकर उसी को सजाने में लगा रहता है। आत्मा की चर्चा एवं चिन्तन के लिए तो उस पर समय ही नहीं है। जबकि आत्मा ही सर्वशक्तिमान, विश्व को प्रकाशित करने वाली, विश्व कल्याणकारी, विघ्न विनाशक, कर्मातीत, शुद्ध तथा परमात्मा द्वारा रक्षित है।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आच्छन (स्थान ग्रहण) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500,00 प्रति पेनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/-प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर अपादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/श्रीमती _____

_____

_____

□□□□□□

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा